बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर 125वीं जयंती विशेषांक

वर्ष : 13 अंक : 4 अप्रैल 2015 ₹ 20

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

राष्ट्र निर्माता
बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर

भारत का संविधान

हम **भारत के लोग,** भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

वर्ष : 13 ★ अंक : 04 ★अप्रैल 2015 ★ कुल पृष्ठ : 72

सम्पादक
सुधीर हिलसायन

सम्पादक मंडल
चन्द्रवली
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
डॉ. प्रभु चौधरी

सम्पादकीय कार्यालय
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
15 **जनपथ, नई दिल्ली**-110001
सम्पादकीय सम्पर्क **011-23320588**
सब्सक्रिप्शन सम्पर्क 011-**23357625**
मोबाईल : 07503210124
फैक्स : 011-23320582
ई.मेल : hilsayans@gmail.com
editorsnsp@gmail.com
वेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in

(सामाजिक न्याय संदेश उपर्युक्त वेबसाईट पर उपलब्ध है)

व्यापार व्यवस्थापक
जगदीश प्रसाद

प्रकाशक व मुद्रक **डॉ. देवेन्द्र कुमार धोदावत**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के लिए इंडिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110064 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन**, सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों /रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों /रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन होगा।

RNI No. : DELHIN/2002/9036

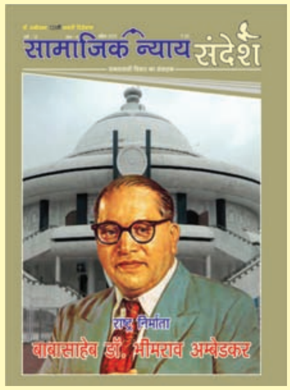

इस अंक में

❖ सम्पादकीय/	सुधीर हिलसायन	2
❖ साक्षात्कार/थावरचंद गेहलोत अद्वितीय है राष्ट्र-निर्माण में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका		4
❖ पुस्तक अंश/ गांधी एवं अछूतों का उद्धार	डॉ. बी.आर. अम्बेडकर	7
❖ लोकतंत्र के महान हस्ताक्षर डॉ. बी.आर. अम्बेडकर	डॉ. आर.एस. कुरील, प्रो. सी. डी. नायक	15
❖ डॉ. अम्बेडकर - महान भविष्य दृष्टा	चन्द्रवली	23
❖ राष्ट्र निर्माता डॉ. अम्बेडकर : लोकतंत्र और दलित विमर्श	प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा	26
❖ डॉ. अम्बेडकर का आहत बचपन एवं समाजोद्धार	डॉ. प्रभु चौधरी	30
❖ पुस्तक अंश/अनुसूचित जातियों की शिकायतें तथा सत्ता हस्तांतरण संबंधी महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार	डॉ. बी.आर. अम्बेडकर	32
❖ डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के वैचारिक योगदान एवं उनकी प्रासंगिकता	डॉ. बिबेक कुमार रजक	38
❖ पुस्तक अंश/डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर - जीवन चरित	धनंजय कीर	41
❖ डॉ अम्बेडकर की लोकतांत्रिक विरासत	डॉ. नामदेव	50
❖ डॉ. अम्बेडकर - दलितों के उद्धारक	डॉ. सुमा टी. रोडनवर	56
❖ अम्बेडकरी विचारधारा के विविध आयाम	नरेश कुमार साहू	60
❖ डॉ. अम्बेडकर - महिला सशक्तिकरण के उद्घोषक	डॉ. भावना शुक्ल	63
❖ आत्मगौरव के पर्याय - डॉ. अम्बेडकर	डॉ. मुनीन्द्र दुबे	65
❖ राष्ट्र का मसीहा : डॉ. अम्बेडकर	सत्य प्रकाश	67

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250
*डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर **डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन**, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।*

सम्पादकीय

राष्ट्र निर्माता बाबासाहेब

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि जातिवाद के कारण ही भारत में राष्ट्र भावना नहीं पनप पाई और भारत बार-बार गुलामी का शिकार होता रहा। उन्होंने एक ऐसे भारत का सपना देखा था जो समृद्ध हो, शक्तिशाली हो, विकसित हो और दुनिया में अग्रणी हो। जाति-व्यवस्था को तोड़े बिना भारत को समृद्ध और शक्तिशाली नहीं बनाया जा सकता, उनके शब्दों में यदि यह कहा जाए कि भारत के समृद्ध और विकसित होने में जाति-व्यवस्था बहुत बड़ी रुकावट रही है तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

'हमें एक ऐसी संस्कृति का विकास करना चाहिए जिसमें प्रत्येक देशवासी को एक 'सम्मानित नागरिक' माना जाए और प्रत्येक नागरिक को 'मानवीय गरिमा' और 'आत्मसम्मान' के साथ जीने का अवसर सुनिश्चित हो तथा देश में परस्पर भाईचारे के साथ प्रेम और सौहार्द की भावना हो।' बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के राष्ट्र निर्माण की प्रतिबद्धता को उपर्युक्त वाक्यों से बखूबी समझा जा सकता है। बाबासाहेब मानते थे कि राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर सकता है जब लोगों के बीच जाति, नस्ल या रंग का अंतर भुलाकर उनमें सामाजिक-भ्रातृत्व को सर्वोच्च स्थान दिया जाए। राष्ट्र के संदर्भ में राष्ट्रीयता का अर्थ सामाजिक एकता में दृढ़ भावना एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में इसका आधार भाईचारा होना चाहिए।

जाति व्यवस्था श्रम विरोधी है, जाति की प्रकृति ही विखण्डन और विभाजन करना है। जाति का यह अभिशाप है। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि जातीय भावनाओं से आर्थिक विकास रुकता है। इससे वे स्थितियां पैदा हो जाती हैं जो कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में सामूहिक प्रयत्नों के विरुद्ध है। जात-पात के रहते ग्रामीण विकास समाजवादी सिद्धांतों के विरुद्ध रहेगा। इसलिए जातिवाद के कारण ही बड़े-बड़े गढ़ बन गए हैं, उन्हें तोड़ा जाए, जिससे शहरों और गांवों में तेजी से विकास हो। इसलिए डॉ. अम्बेडकर का लगातार यह प्रयत्न रहता था कि भारत में एक ऐसी साझी संस्कृति का निर्माण हो जिसमें जात-पात के आधार पर लोगों के साथ अन्याय और शोषण न हो और हर नागरिक अपनी क्षमताओं के अनुसार राष्ट्र निर्माण में योगदान दे सके।

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए अपने भाषण में कहा था- भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम संविधानवाद की भावना विकसित करें और संविधानेत्तर तरीकों को जल्दी से जल्दी तिलांजलि दे दें।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चिंतन यथार्थ परक और मानवता के लिए था। समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, गरिमा, आत्मसम्मान

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

एवं न्याय उनके दर्शन का मुख्य लक्ष्य रहा है। जिसके लिए उन्होंने ऐसी सामाजिक संरचना की संकल्पना की जिसमें मनुष्य को अपना सर्वांगीण विकास करने का अवसर प्राप्त हो। जिसके बाद एक ऐसा समृद्ध भारत का निर्माण हो ताकि समाज में जाति, सम्प्रदाय या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। सभी को समान अवसर प्राप्त हो, गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने का वातावरण हो। यहां यह बताना समीचीन होगा कि समाज के सभी वर्गों के विकास के बगैर किसी 'राष्ट्र' की संकल्पना ही बेमानी है।

तकरीबन 35 वर्षों के बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने शोसियो-पोलिटिकल-कल्चरल एक्टिविजम अर्थात् सामाजिक- राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कर्म के बियावान में विचरण करते हुए उन्होंने समाज के सभी वर्गों के उत्थान के लिए कार्य किया। इस पर चर्चा फिर कभी।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती के अवसर पर 'राष्ट्र निर्माता बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर' विषय पर केन्द्रित यह विशेषांक आपको सौंपते हुए बहुत खुशी हो रही है। माननीय मंत्री सामाजिक न्याय और अधिकारिता एवं अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान ने अपने साक्षात्कार में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका के बारे में बताया है, विद्वान लेखकों ने भी बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास भी है कि सुधी पाठकों, शोध अध्येताओं आदि के लिए यह विशेषांक लाभकारी होगा।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष का साल है। इसे पूरे साल अप्रैल 2015 से अप्रैल 2016 तक मनाई जाएगी। हमारा प्रयास होगा कि इस दौरान एक 'वार्षिकी' का प्रकाशन भी हो जिसमें बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विभिन्न पहलुओं पर शोधपरक ढंग से सामग्री उपलब्ध कराई जाए।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती पर योगदानी लेखकों, पाठकों व बाबासाहेब के अनुयायियों को बधाई एवं बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

> "डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चिंतन यथार्थ परक और मानवता के लिए था। समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, गरिमा, आत्मसम्मान एवं न्याय उनके दर्शन का मुख्य लक्ष्य रहा है। जिसके लिए उन्होंने ऐसी सामाजिक संरचना की संकल्पना की जिसमें मनुष्य को अपना सर्वांगीण विकास करने का अवसर प्राप्त हो। जिसके बाद एक ऐसा समृद्ध भारत का निर्माण हो ताकि समाज में जाति, सम्प्रदाय या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। सभी को समान अवसर प्राप्त हो, गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने का वातावरण हो। यहां यह बताना समीचीन होगा कि समाज के सभी वर्गों के विकास के बगैर किसी 'राष्ट्र' की संकल्पना ही बेमानी है।"

(सुधीर हिलसायन)

अद्वितीय है राष्ट्र-निर्माण में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका

विश्व प्रसिद्ध चिंतक और विधिवेत्ता बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नव भारत के निर्माण में अविस्मरणीय योगदान रहा है। शोषित-दलित समुदाय की पीड़ा को व्यापक संदर्भों में रेखांकित करते हुए उन्होंने व्यापक सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया था। 'बाबासाहेब' के नाम से सुविख्यात डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार हैं। सही अर्थों में समूची मानवता के कल्याण के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था। उनके जीवन, कृतित्व और संदेशों को लेकर देश के वरिष्ठ नेता, भारत के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री एवं डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री थावरचंद गेहलोत से प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा एवं डॉ. प्रभु चौधरी ने 'सामाजिक न्याय संदेश' मासिक के लिए विस्तृत बातचीत की, यहां प्रस्तुत है उसके अंश। - सम्पादक

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री एवं अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान : श्री थावरचंद गेहलोत

• डॉ. अम्बेडकर का जीवन निरंतर संघर्षों और अविराम साधना में बीता था। उनके जीवन के कुछ ऐसे मार्मिक प्रसंग बताएं, जो आपको गहराई से प्रभावित-प्रेरित करते हैं।

- मैंने जब डॉ. अम्बेडकर जी को पढ़ा, उनकी सोच ने मुझे प्रभावित किया। उनकी सोच का निष्कर्ष है समाज और राष्ट्र को सभी प्रकार के अन्याय और अत्याचार से मुक्त करना, संगठित होना, शिक्षित होना। छुआछूत और भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष करते रहना। डॉ. अम्बेडकर ने विषम परिस्थितियों में उच्चतम स्तर की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् वे बड़े-बड़े पदों पर सेवाएं दे सकते थे, किंतु उन्होंने सामाजिक समरसता के लिए समन्वयवादी सोच के आधार पर एक मार्ग अपनाया। राजनीति में भी सक्रिय हुए, सांसद बने, मंत्री बने। लेकिन इस दिशा में लगातार प्रयास करते रहे। उन्होंने देखा कि सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक भेदभाव दूर नहीं हो पा रहा है। उन्होंने उसे समाप्त करने का प्रयास किया। समान नागरिक कानून, हिंदू कोड बिल आदि को लेकर महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। वित्तीय क्षेत्र में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की अवधारणा दी। श्रमिकों के लिए पी.एफ., ग्रेच्यूटी जैसी व्यवस्थाओं को लेकर कार्य किया। महिलाओं के हित को लेकर बहुत कार्य किया। कई बातों पर जब वे सरकार में रहकर अमल नहीं करवा पा रहे थे, तब उन्होंने सरकार से त्यागपत्र दे दिया था। उन्होंने संविधान बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मैंने डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आत्मसात करते हुए देश और जनता के हित में सामाजिक समरसता लाने का प्रयास किया।

• दलित-वंचित समाज के एक अंग के रूप में उसकी पीड़ा को डॉ. अम्बेडकर ने न सिर्फ स्वयं झेला था, वरन व्यापक परिप्रेक्ष्य में उस पीड़ा को समाप्त करने के लिए आजीवन कटिबद्ध रहे। डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष को आप किस रूप में लेते हैं।

- समाज में व्याप्त भेदभाव-पूर्ण व्यवस्था को समाप्त करने में डॉ. अम्बेडकर का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पूर्व में

जाति-वर्ग जैसे कई स्तरों पर असमानता का व्यवहार होता था, जिसे समाप्त करने के साथ ही देश को समन्वय और समरसता की आवश्यकता है।

- **स्वयं आपके अपने जीवन- संघर्ष में डॉ. अम्बेडकर के जीवन-संदेश किस तरह आपका दिशा-दर्शन करते रहे।**

– अत्यंत विषम परिस्थितियों में मैंने पढ़ाई-लिखाई की। मैंने उतनी ही विषम परिस्थितियों को झेला जितनी डॉ. अम्बेडकर के सामने थी। गरीबी के साथ नागदा मिल की झुग्गी में रहते हुए स्वामी विवेकानंद के ध्येय वाक्य 'उठो, जागो और प्राप्त करो' पर अमल करता रहा। अपने जीवन-संघर्ष के दौरान मैंने स्वयं डॉ. अम्बेडकर की कार्य-शैली के बहुत सारे बिंदुओं को जाना, समझा और उस पर अमल किया। पं. दीनदयाल उपाध्याय, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, लोकमान्य तिलक आदि ने जो प्रयास किए थे, मेरे जीवन पर उनका भी असर पड़ा। आज भी राजनीति के माध्यम से मेरे प्रयास जारी हैं।

- **डॉ. अम्बेडकर द्वारा तैयार किए गए सामाजिक परिवर्तन के आदर्श को लेकर आपके क्या विचार हैं? उन आदर्शों को साकार करने के लिए किस प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है? भेदभाव से मुक्त समतामूलक समाज की स्थापना में डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी है। इस दिशा में वर्तमान शिक्षा प्रणाली की भूमिका से आप संतुष्ट हैं?**

– मैंने यह महसूस किया है कि एक वर्ग यह सोचता है कि डॉ. अम्बेडकर हमारे हितैषी थे। दूसरे वर्ग के कुछ लोग सोचते हैं कि वे हमारे विरोधी थे। मैंने अध्ययन किया कि वे सर्वव्यापी, सर्वहितैषी, सर्वस्पर्शी हैं। उनमें देशभक्ति का जज्बा था। वे लोकगति से समरसतामय देश का निर्माण करना चाहते थे। उनके विचार आज भी प्रेरणादायी हैं, प्रासंगिक हैं। हमारी शिक्षा में उन मूल्यों का समावेश अधिक से अधिक होना चाहिए जो हमें सभी प्रकार के भेदभाव और असमानता से ऊपर उठा दें। शिक्षा में अमीर-गरीब, छोटे-बड़े का भेद मिटाना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

- **स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के आदर्श को पूर्ण करने में भारतीय संविधान से डॉ. अम्बेडकर की किस प्रकार की अपेक्षाएं रही हैं? उन्हें किस तरह पूरा किया जा सकता है? सामाजिक न्याय की दिशा में डॉ. अम्बेडकर जी की मान्यताओं को किस तरह लोगों तक पहुंचाया जाना चाहिए, जिससे समाज में कई स्तरों पर जारी अन्याय से हम मुक्त हो सकें?**

– स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व को स्थापित करना डॉ. अम्बेडकर का सर्वोपरि लक्ष्य रहा है। उन्होंने भारतीय संविधान की आधारशिला रखते हुए एक ऐसे लोकतंत्र की परिकल्पना की है जो इस आदर्श की पूर्ति में सहायक हो। आज हमें हर क्षेत्र में इस आदर्श को साकार करना होगा। 'सामाजिक न्याय' का आदर्श जन-जन तक पहुंचे, इसके लिए जरूरी है कि कानूनी प्रावधानों के साथ ही लोगों की मानसिकता में भी सकारात्मक परिवर्तन लाया जाए।

- **भारतीय समाज में स्त्री की दुरावस्था को समाप्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर जी के विचारों और उनके द्वारा किए गए प्रयासों को लेकर आप क्या सोचते हैं?**

– डॉ. अम्बेडकर ने समाज के शोषित, पीड़ित और दमित वर्ग के बारे में जितना सोचा, उतना ही महिलाओं के मान-सम्मान के बारे में विचार किया है। उन्होंने स्त्री-शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया। स्त्री को पुरुषों के बराबर अधिकार दिलाने की योजना उनकी थी। संविधान के निर्माण में उन्होंने इस बात पर विशेष ध्यान दिया।

- **डॉ. अम्बेडकर ने जिस तरह के लोकतन्त्र का सपना देखा था? उसे हम कितना पूरा कर पाए हैं और कितने दूर हैं?**

– डॉ. अम्बेडकर द्वारा देखे गए लोकतंत्र के सपने को साकार करने के लिए आवश्यक है कि शत प्रतिशत मतदान हो। प्रत्येक व्यक्ति बिना लोभ, लालच, भय या प्रलोभन के पूर्ण स्वतंत्र और निष्पक्ष सोच के आधार पर मतदान करे। मतदान को बढ़ाने की आवश्यकता है।

- **सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर के विचारों को साकार करने के लिए किस प्रकार के प्रयास किए जा रहे हैं? इस दिशा में आपकी नई योजनाएं क्या हैं? डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के माध्यम से मुख्य रूप से किन-किन दिशाओं में कार्य किए जा रहे हैं? आपकी आगे की क्या कार्य-योजनाएं हैं?**

– डॉ. अम्बेडकर के सपनों को साकार करने की दृष्टि से 'मंत्रालय' और 'प्रतिष्ठान' निरंतर सक्रिय है। मंत्रालय की योजनाओं का लाभ तकरीबन 70 करोड़ लोग ले सकते हैं। इसके कार्य और लक्ष्य बहुआयामी हैं। अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, किन्नर, कुष्ठ रोगी, वृद्धजन, घूमन्तु

जन, सफाई कार्य में लगे सफाईकर्मी आदि लोग बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, उनके लिए छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था की जाती है। जो विदेश जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, उन्हें ऋण उपलब्ध करवाते हैं। स्वास्थ्य, प्रशिक्षण एवं स्वावलम्बन की दिशा में महिला और पुरुषों को सक्षम और संपन्न बनाने के प्रयास किए जाते हैं। मंत्रालय ने सभी वर्गों के हित संरक्षण की कार्य-योजना बनाई है।

डॉ. अम्बेडकर के विचारों के प्रसार को दृष्टिगत रखते हुए हाल ही में जनपथ नई दिल्ली पर 'डॉ. अम्बेडकर अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र' का शिलान्यास माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के कर कमलों द्वारा 20 अप्रैल को किया जा रहा है। लगभग 200 करोड़ रुपये की लागत से इस केन्द्र का निर्माण होगा। यहां उनके विषय में हर दृष्टिकोण से अध्ययन-अनुसंधान किया जाएगा। दिल्ली में ही अलीपुर रोड पर डॉ. अम्बेडकर के परिनिर्वाण स्थल पर 100 करोड़ रुपए की लागत से 'डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक' बनाने का निर्णय लिया गया है।

• ग्रामों की आत्मनिर्भरता के लिए आपकी व आपके सरकार की क्या योजना है?

– ग्रामों को आत्मनिर्भर और सम्पन्न बनाने के लिए अधोसंरचना का विकास आवश्यक है। मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति गांव में ही हो जाए, यह जरूरी है। कम से कम 5-5 कि.मी. की दूरी में सभी जरूरतें पूरी हो जाएं। गांव में रोजगार बढ़ाने की जरूरत है। इसके अभाव में शहरीकरण बढ़ रहा है। अटल जी द्वारा परिकल्पित 'प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना (पी.एम.जी. एस.वाई.), किसान क्रेडिट कार्ड, नदी जोड़ने की योजना इसी दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम रहे हैं। गांवों में समृद्धि-सम्पन्नता आएगी तो 'समृद्ध भारत' का निर्माण स्वयं हो जाएगा। इस दिशा में माननीय प्रधानमंत्री जी के नेतृत्व व कुशल मार्गदर्शन में बहुत तेजी से काम चल रहा है।

• आज के समय में युवा भारत के नवनिर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर जी के किन संदेशों को आत्मसात करने की आवश्यकता है? वर्तमान दौर की समस्याओं और प्रश्नों के समाधान के लिए बाबासाहेब का चिंतन किस प्रकार की दिशा देता है?

– भारत में आज डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व, कृतित्व और सोच पर सही निष्कर्ष सामने लाने की जरूरत है। विशेषकर युवाओं के बीच उनके संदेशों को व्यापक सोच

के साथ पहुंचाने की आवश्यकता है। सामाजिक कुरीतियों को छोड़ते हुए डॉ. अम्बेडकर जी के समन्वयवादी सोच के आधार पर देशवासियों को संस्कारवान, स्वाभिमानी और स्वावलम्बी बनाने के लिए प्रयास जरूरी है। आज के समय में हम तभी सफल हो सकते हैं जबकि डॉ. अम्बेडकर के सर्वव्यापी और सर्वहितैषी विचार देशवासी आत्मसात् करें।

• डॉ. अम्बेडकर ने राज्य को समाज सेवा का माध्यम माना है। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?

– राजनीति किसी भी प्रकार से स्वहित का माध्यम नहीं होना चाहिए। राज्य का मुख्य ध्येय है समाजहित और देशहित। शासक वर्ग को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

• अंत में आप देशवासियों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

– बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की जयंती का यह 125वां वर्ष है पूरे साल अप्रैल 2015 से अप्रैल 2016 तक यह पूरे देश में मनाया जाएगा। इसके लिए हमारी वृहत् कार्य योजना है। इन कार्य योजना के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर को समग्रता में समझने में मदद मिलेगी और यही हमारी ओर से युगदृष्टा बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष पर मेरी ओर से पूरे देशवासियों को हार्दिक बधाई व बहुत-बहुत शुभकामनाएं। ■

गांधी एवं अछूतों का उद्धार

■ डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

किसी देश में संवैधानिक पद्धति की सरकार को बनाए रखने के लिए संवैधानिक नैतिकता आवश्यक होनी चाहिए। परन्तु संवैधानिक सरकार का चलना लोगों द्वारा चुनी गई स्वशासी सरकार के समान ही नहीं होता। साथ ही यह भी माना जा सकता है कि वयस्क मताधिकार से बनी सरकार कहने को तो राजतंत्र से भिन्न लोगों की सरकार हो सकती है, परन्तु इसी से यह लोकतांत्रिक सरकार नहीं हो जाती जिससे इसे लोगों द्वारा और लोगों के लिए सरकार कहा जा सके।

जिसे पश्चिमी यूरोप की संसदीय लोकतंत्र की त्रासदी का पता है उसे लोकतंत्र के दिवा स्वप्नों के और साक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं होगी। मैंने पहले भी एक स्थान पर जो कहा था उसके अनुसार पश्चिम यूरोप में लोकतंत्र की विफलता का कारण निम्नांकित शब्दों में निरूपित किया जा सकता है:-

''मानव समाज में सरकारों में बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। एक समय था, जब सरकार स्वेच्छाचारी सम्राटों का निरंकुश स्वरूप हुआ करती थी। फिर लंबे समय तक हुए रक्तपात के बाद सरकार की नई पद्धति आई जो संसदीय लोकतंत्र कहलाया। तब यह समझा गया कि सरकार के स्वरूप की यह चरम परिणति है। तब यह विश्वास था कि इससे एक स्वर्ण युग आ जाएगा, जिसमें प्रत्येक मानव को समानता, संपत्ति और खुशहाली की स्वतंत्रता मिलेगी। ऐसी उच्चाकांक्षाओं का अच्छा आधार था। संसदीय लोकतंत्र में जनता की अभिव्यक्ति के लिए विधायिका होती है। विधायिका के अधीन कार्यपालिका होती है और दोनों पर नियंत्रण रखने तथा निर्धारित सीमाओं में रखने के लिए न्यायपालिका होती है। संसदीय लोकतंत्र में लोकप्रियता के सभी लक्षण होते हैं अर्थात लोगों की लोगों द्वारा लोगों के लिए सरकार। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध भी विद्रोह हुए, हालांकि एक सौ साल भी नहीं हुए हैं जब इसका उदय हुआ और इसे पूरे विश्व में स्वीकार और अंगीकार कर लिया गया। अब इसके विरुद्ध इटली, जर्मनी, रूस और स्पेन में विद्रोह हुए। कुछ ही ऐसे देश हैं जहां संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध असंतोष नहीं है। संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध असंतोष क्यों पनपा? यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसा कोई अन्य देश नहीं है जहां इस प्रश्न पर भारत के समान तत्परता से विचार किया जाना चाहिए। भारत में संसदीय लोकतंत्र की बात चल रही है। यहां किसी ऐसे साहसी व्यक्ति की अत्यंत आवश्यकता है, जो भारतीयों को बता सके, ''संसदीय लोकतंत्र से सावधान रहो। यह इतनी श्रेष्ठ व्यवस्था नहीं हैं, जैसी दिखाई देती है।''

संसदीय लोकतंत्र क्यों विफल हुआ? तानाशाहों के देशों में यह इसलिए विफल हुआ कि इसकी गति बहुत धीमी है। इसमें सहज क्रिया का विलम्ब होता है। किसी संसदीय लोकतंत्र में विधायिका द्वारा कार्यपालिका के कार्यों में बाधा डाली जा सकती है, जो कार्यपालिका द्वारा प्रस्तावित कानूनों को पास करने से इंकार कर सकती है और यदि विधायिका द्वारा बाधा न डाली जाए, तो न्यायपलिका बाधा डाल सकती है, जो कानून को अवैध घोषित कर सकती है। संसदीय लोकतंत्र में तानाशाही की छूट नहीं होती। इसलिए इटली, स्पेन और जर्मनी में इसकी साख जाती रही। इन देशों ने तानाशाही का स्वागत किया। यदि अकेले तानाशाह ही संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध होते तो कोई बात नहीं थी। संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध घोषणा का स्वागत इस कारण किया जाएगा, क्योंकि यह तानाशाही पर लगाम का काम करेगी। परन्तु दुर्भाग्य से उन देशों तक में संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध काफी असंतोष है जहां के लोग तानाशाही के विरुद्ध हैं। संसदीय लोकतंत्र के विषय में यह अत्यधिक खेदजनक है। यह बहुत ही खेदजनक है क्योंकि संसदीय लोकतंत्र एक बिंदु पर टिका नहीं रहा। यह तीन दिशाओं में बढ़ा। समान मताधिकार के रूप में यह राजनीतिक अधिकारों में समानता लाया। बहुत कम ऐसे देश हैं, जहां संसदीय

लोकतंत्र है और वयस्क मताधिकार नहीं है। उसने सामाजिक समता और आर्थिक अवसरों को राजनीतिक अधिकारों में समता की धारणा का विस्तार किया। यह माना जाता है कि जो संगठन समय के प्रतिकूल हैं वे सरकार को विवश नहीं कर सकते। इसलिए जो देश लोकतंत्र के पक्षधर हैं वहां भी संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध गहरा असंतोष है। तानाशाही वाले देशों के मुकाबले वहां स्वाभाविक रूप से असंतोष के कारण भिन्न हैं। इस समय विस्तार से नहीं लिखा जा सकता परन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध असंतोष का कारण यह अहसास हो जाना है कि यह जनसाधारण को स्वतंत्रता का अधिकार, संपत्ति और खुशहाली का अधिकार दिलाने में विफल रहा। इस विफलता का कारण या तो गलत विचारधारा हो सकता है या गलत संगठन अथवा दोनों ही।

दोषमुक्त विचारधाराएं जो संसदीय लोकतंत्र की विफलता के लिए जिम्मेदार हैं, उनके विषय में मुझे संदेह नहीं कि उनमें से एक है समझौते या संविदा की आजादी। यह विचारधारा एक रूढ़ि बन गई और इसे स्वतंत्रता के नाम पर जकड़कर रखा गया। संसदीय लोकतंत्र में आर्थिक विषमताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता और इसकी परवाह नहीं की जाती कि संविदा पक्षों के बीच संविदा स्वतंत्रता के परिणामों पर इसके बावजूद विचार नहीं किया जाता कि संविदा पक्ष मोलतोल करने की बराबर की स्थिति में नहीं होते। इस व्यवस्था में यह गलत नहीं माना जाता कि संविदा की स्वतंत्रता के नाम पर प्रबल पक्ष निर्बल को दबा बैठे। इसका परिणाम यह है कि संसदीय लोकतंत्र स्वतंत्रता की प्रचारक बन कर एक तरफ खड़ी हो जाती है और गरीबों, दलितों और वंशानुगत दीन-हीन वर्ग पर आर्थिक ज्यादतियां होती हैं।

संसदीय लोकतंत्र दूषित करने वाली दूसरी गलत विचारधारा है, जिसमें आभास नहीं होता कि जब तक आर्थिक सामाजिक लोकतंत्र नहीं होता, तब तक राजनीतिक लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति इस सिद्धांत को चुनौती दे सकता है, जो इसे चुनौती देने पर आमादा हों मैं उनसे एक प्रतिप्रश्न करूंगा। इटली, जर्मनी और रूस में संसदीय लोकतंत्र आसानी से क्यों विफल हो गया? इंगलैंड और अमरीका में वह यूं ही क्यों विफल न हो गया? मेरे हिसाब से इसका एक ही कारण है। वह यह है कि दोनों देशों में पूर्वोक्त देशों की अपेक्षा अधिक आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र है। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र राजनीतिक लोकतंत्र का तानाबाना है। जितना ही मजबूत यह तानाबाना होगा उतनी दृढ़ता उसमें होगी। समानता लोकतंत्र का दूसरा नाम है। संसदीय लोकतंत्र में स्वतंत्रता की लालसा उत्पन्न होती है। इसका समानता से कोई रिश्ता ही नहीं होता। यह समानता का महत्व समझने में विफल रही और समानता तथा स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करने का इसमें प्रयत्न ही नहीं किया जाता। परिणाम यह निकलता है कि स्वतंत्रता समानता को निगल जाती है और लोकतंत्र एक मजाक बन कर रहा जाता है।

संसदीय लोकतंत्र दूषित करने वाली दूसरी गलत विचारधारा है, जिसमें आभास नहीं होता कि जब तक आर्थिक सामाजिक लोकतंत्र नहीं होता, तब तक राजनीतिक लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति इस सिद्धांत को चुनौती दे सकता है, जो इसे चुनौती देने पर आमादा हों मैं उनसे एक प्रतिप्रश्न करूंगा। इटली, जर्मनी और रूस में संसदीय लोकतंत्र आसानी से क्यों विफल हो गया?

मैंने कुछ गलत विचारधाराओं का जिक्र किया है, जो मेरे विचार से संसदीय लोकतंत्र की विफलता का कारण हैं। परन्तु मुझे यह भी विश्वास है कि गलत विचारधारा की अपेक्षा गलत संगठन संसदीय लोकतंत्र की विफलता के लिए अधिक जिम्मेदार है। सारे राजनीतिक संगठन दो वर्गों में बंट जाते हैं – शासक और शासित। यह दुर्भाग्य है। यदि इतना ही दोष होता तो भी अधिक बुराई नहीं थी। परन्तु इस विभाजन का दुखद पक्ष यह है कि विभाजन एक ढर्रा और नियति बन जाती है कि शासक जातियां सदा शासक ही बनी रहती हैं और शासित जातियां कभी शासक नहीं बन सकतीं। यह इसलिए होता है कि लोग यह परवाह ही नहीं करते कि वे अपना शासन आप चलाएं। वे इसी बात से संतुष्ट हो जाते हैं कि एक सरकार बना दें और वह उन पर राज करती रहे। इससे स्पष्ट होता कि संसदीय लोकतंत्र कभी लोगों की सरकार या लोगों द्वारा बनाई गई सरकार नहीं रही और वास्तव में यह वंशानुपात प्रजा और वंशानुगत शासकों की सरकार रही है। राजनीति का यह वह विषैला संगठन है, जिसने संसदीय लोकतंत्र को दयनीय रूप से विफल कर दिया है। यही कारण है कि संसदीय लोकतंत्र जनसामान्य की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर सका और उन्हें

स्वतंत्रता, संपत्ति और प्रसन्नता नहीं दे सका।''

यदि लोकतंत्र की विफलता के कारणों का यह विश्लेषण सही है तो लोकतंत्र के हिमायतियों के लिए यह एक चुनौती है। कुछ मूलभूत बातें हैं, जो लोकतंत्र की जड़े हैं, जिसकी वे अनदेखी नहीं कर सकते। बात को और स्पष्ट करने के लिए ये बातें क्रमवार रखनी होंगी।

पहले तो हमें यह ऐतिहासिक सत्य स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक देश में दो वर्ग होते हैं – शासक और दास वर्ग, जिनके बीच बराबर सत्ता–संघर्ष रहता है। दूसरी बात यह है कि अपनी सत्ता और प्रतिष्ठान के बल पर शासित वर्ग पर अपना प्रभुत्व जमाना उनके लिए आसान काम है। तीसरी बात यह है कि वयस्क मताधिकार और चुनावों की प्रवृत्ति के बावजूद शासक वर्ग के सामने सत्ता प्राप्त करने में कोई अवरोध नहीं आता। चौथी बात यह है कि शासित वर्ग के लोग अपनी हीन भावना के कारण शासक वर्ग को अपना स्वाभाविक नेता मानते हैं और दास वर्ग उन्हें स्वेच्छा से शासक चुन लेता है। पांचवीं बात यह है कि लोकतंत्र में स्वायत्त शासन में आस्था न रखने वाले शासक वर्ग की मौजूदगी के कारण और इस तथ्य के संदर्भ में कि जहां शासक वर्ग सत्ता की डोर को थामे रहता है, वहां यह सोचना ही गलत है कि लोकतंत्र और स्वशासन समाज का वास्तव में अंग बन गए हैं। छठी बात यह है कि लोकतंत्र और स्वशासन तभी यथार्थ रूप ग्रहण नहीं कर सकते हैं जब वयस्क मताधिकार लागू हो जाए बल्कि ये तभी साकार बन सकते हैं जब शासक वर्ग की वह क्षमताएं ही समाप्त हो जाएं जिनके बल पर वह सत्ता प्राप्त करता है। सातवां तथ्य है कुछ देशों में शासित वर्ग शासक वर्ग को वयस्क मताधिकार से सत्ताच्युत करने में सफल हो जाता हैं। कुछ दूसरे देशों में शासक वर्ग की जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि शासित वर्ग को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वयस्क मताधिकार के साथ कुछ अन्य संरक्षणों की भी आवश्यकता होती है।

चूंकि इन विचारों का प्रतिपादन करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए हर स्वतंत्रताप्रेमी के सामने उन्हें प्रमुखता से रखना आवश्यक है, ताकि वह इनको देख सके और समझ सके। इनसे उसे इतनी सहायता मिलेगी जितनी किसी अन्य बात से नहीं मिल सकती। इसी से उसे अहसास होगा कि लोकतंत्र के लिए संविधान की रचना के समय वह याद रखे कि ऐसे संविधान का मुख्य उद्देश्य शासक जातियों को सत्ता का स्थाई भोगी न बनने देना है जिससे लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना की प्रक्रिया हठधर्मिता बनकर रह जाए। शासक जातियों को सत्ता से बाहर रखना मुख्य उद्देश्य है। लोकतांत्रिक सरकार की प्रक्रिया स्थापना की समरूप न रहे कि लोकतंत्र की प्रक्रिया को न केवल सहन किया जाए बल्कि उसे स्वीकार किया जाए क्योंकि वह प्रक्रिया ही है, जिसके बल पर शासक वर्ग शासित वर्ग पर सर्वत्र अपना वर्चस्व बनाए रखता है।

यही लोकतंत्र है, परन्तु राजनीति पर जिन पश्चिमी लेखकों से विदेशी प्रभावित होते हैं, वे राजनीति के इस यथार्थ रूप को समझने में असफल रहे हैं। इसके बजाए वे इसके सैद्धांतिक या किताबी तथा ऊपरी बातों से ही प्रभावित हैं, जो संवैधानिक नैतिकता, वयस्क मताधिकार तथा चुनावों की आवृति को ही सब कुछ समझते हैं।

जो इस विचार को मानते हैं कि लोकतंत्र इन तीनों को छोड़ कर और कुछ नहीं है या वह इनसे भिन्न नहीं है वे शासक वर्ग के ही विचारों को प्रकट करते हैं। शासक वर्ग अनुभवों से जानता है कि इस प्रकार की व्यवस्था इनकी सत्ता और स्थिति के लिए घातक साबित नहीं हुई है। दरअसल उन्होंने अपने अधिकारों और प्रतिष्ठा को कानूनी गुणों का लबादा ओढ़ा लिया है और शासित वर्ग के प्रहार के सामने अपनी निर्बलता का असर कम कर दिया है।

जो यह चाहते हैं कि लोकतंत्र और स्वशासन स्वत: स्वाभाविक रूप से प्राप्त हों और वे केवल सैद्धांतिक न हों तो उनके लिए बेहतर यह है कि वे इस बात को भली–भांति समझ लें कि स्थायी शासक वर्ग की मौजूदगी लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। लोकतंत्र को अपनाने के लिए ऐसी ही नीति अपनानी होगी। कोई निष्कर्ष निकालने से पूर्व उन वर्गों की मौजूदगी को भुला देना एक घातक भूल होगी और देखना होगा कि क्या किसी स्वतंत्र देश में स्वतंत्रता किसी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के ही हिस्से में आएगी अथवा वह सभी को नसीब होगी। मेरे विचार से जो विदेशी कांग्रेस का पक्ष लेना पंसद करते हैं, उन्हें यह नहीं पूछना चाहिए कि क्या कांग्रेस स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है? उसे पूछना चाहिए कि कांग्रेस किस स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है? क्या वह भारत की शासक जातियों के लिए लड़ रही है या भारत की जनता के लिए लड़ रही है? यदि उसे पता चलता है कि कांग्रेस शासक जातियों के लिए लड़ रही है तो उसे कांग्रेस से पूछना चाहिए कि क्या भारत की शासक जातियां राज करने के लिए उपयुक्त पात्र हैं? कांग्रेस का पक्ष लेने से पूर्व उसे कम से कम इतना तो करना ही चाहिए।

इन प्रश्नों का कांग्रेस क्या उत्तर देगी? मुझे पता नहीं है। परन्तु मैं इन सवालों का सही उत्तर दे सकता हूं।

IV

मैं नहीं कह सकता कि इस अध्याय क तीसरे भाग में जो लिखा गया है उससे विदेशी प्रभावित होंगे अथवा नहीं। यदि वह उससे प्रभावित होते हैं तो वे निस्संदेह इस बात के सबूत मांगेंगे कि कांग्रेस देश की आजादी की लड़ाई लड़ कर देश में लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष नहीं कर रही है, बल्कि प्राचीन हिन्दू राजनीति की पुनर्स्थापना की तैयारी कर रही है, जिससे वंशानुगत शासक जातियां शासित

वर्ग पर राज कर सकें। मुझे यह पता नहीं कि विदेशी साक्ष्य से संतुष्ट होंगे या नहीं। परन्तु मैं इसे उनके समक्ष रखने के लिए तैयार हूं।

भारत में शासक जातियां कौन हैं? भारतीयों के लिए यह प्रश्न आवश्यक नहीं है, परन्तु विदेशियों के लिए प्राथमिक और अनिवार्य है। इसलिए इस पर विचार किया जाना चाहिए। भारत में शासक जातियां मुख्यतया ब्राह्मण हैं। आश्चर्य की बात है कि आज के बाह्मण इस कथन का खंडन करते हैं कि वे शासक जातियों से संबंधित है यद्यपि वे किसी समय अपने को भूदेव कहते थे। उन्होंने यह पलटी क्यों खाई? प्रत्येक समुदाय में बौद्धिक वर्ग को उसकी आचार संहिता द्वारा एक पावन कर्तव्य सौंपा जाता है, अर्थात् समुदाय का हित रक्षण। यह नहीं कि अपने हितों के लिए वे उसी कर्तव्य की बलि चढ़ा दें। संसार में किसी आध्यात्मिक वर्ग ने इतना विश्वासघात नहीं किया जितना भारत में ब्राह्मणों ने किया है। यह सोचना होगा कि उन्होंने अपराधबोध से तो यह पलटी नहीं खाई है क्योंकि उन्होंने यह सोचा होगा कि हमने जो विश्वासघात किया उससे वे दुनिया में किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रहे। या यह उनका विनम्र भाव है? अब यह देखा जाए कि इनमें से सच क्या है? ब्राह्मण ही शासक जातियां हैं, इस पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। जरूरी हो तो दो प्रकार से इसकी परीक्षा की जा सकती है। प्रथम परीक्षा लोगों की इनके प्रति भावना की और दूसरी प्रशासन में इनकी भागीदारी की। जहां तक पहले परीक्षण की बात है अर्थात् लोगों की ब्राह्मण वर्ग के प्रति भावना के अनुसार चाहे वह ऊंचा हो या नीचा सबके लिए ब्राह्मण पवित्र है। वह अत्यधिक धर्मात्मा है, जिसके आगे सब नतमस्तक होते हैं। पूर्व ब्रिटिश काल में उसे दंड से मुक्ति मिली हुई थी, जो निम्न वर्ग को प्राप्त नहीं थी। प्राचीन काल में ब्राह्मण चाहे हत्या जितना जघन्य अपराध करें, उसे मृत्यु दंड नहीं दिया जा सकता था। उसे पवित्र मनुष्य मान कर ही सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं।

एक समय ऐसा था जब शासित वर्ग का कोई मनुष्य उस पानी को पिए बिना भोजन नहीं कर सकता था, जिस पानी से ब्राह्मण के पैर का अंगूठा न धोया गया हो। सर पी.सी.रे ने अपने बचपन की बात लिखी है कि कलकत्ता की सड़कों पर प्रातः काल शासित जातियों के बच्चे पात्रों में पानी लिए ब्राह्मण के पैर धोने के लिए घंटों प्रतीक्षा किया करते थे। वे पैर धोकर यह पानी अपने माता पिता को देते थे, जो भोजन के लिए उनकी प्रतीक्षा करते रहते थे। ब्राह्मण प्रथम फल प्राप्त करने का सही अधिकारी था। मालाबार में जहां संबंधम् विवाह प्रथा प्रचलित थी वहां शासित जातियां (जैसे नायर) अपनी कन्याओं को ब्राह्मण द्वारा रखैल बनाए जाने को अपनी इज्जत समझते थे। यहां तक कि राजा भी अपनी रानियों को शील भंग करने के लिए ब्राह्मण को निमंत्रण देते थे।

ब्रिटिश शासन के कारण और कानून के समक्ष समानता के कारण ब्राह्मणों के विशेषाधिकार और दंडित न किए जा सकने की सुविधाएं छिन गईं। फिर भी निम्न वर्ग उसे पवित्र मानते हैं। आज भी वे उसे ''स्वामी'' कह कर पुकारते हैं, जिसका अर्थ है भगवान।

दूसरे परीक्षण से भी ऐसा ही निष्कर्ष निकलता है। उदाहरण के लिए मद्रास प्रेसीडेंसी को लीजिए। अगले पृष्ठ पर तालिका संख्या 1 का अवलोकन कर विचार करें। उससे स्पष्ट है कि वर्ष 1943 में राजपत्रित पद ब्राह्मणों तथा अन्य समुदायों में किस प्रकार बांटे गए थे।

इसी प्रकार के आंकड़े इस कथन की पुष्टि में अन्य प्रांतों से भी प्रमाण के तौर पर दिए जा सकते हैं। परन्तु उसके लिए परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं। ब्राह्मण अपने-आपको शासक जाति का सदस्य होने का दावा करते हैं या नहीं, वास्तविकता यह है कि प्रशासन पर उन्हीं का नियंत्रण है और शासित जातियां उनके ब्राह्मणत्व को स्वीकारती हैं। यह प्रमाण काफी है।

दरअसल यह संभव नहीं कि ब्राह्मण

एक समय ऐसा था जब शासित वर्ग का कोई मनुष्य उस पानी को पिए बिना भोजन नहीं कर सकता था, जिस पानी से ब्राह्मण के पैर का अंगूठा न धोया गया हो। सर पी. सी.रे ने अपने बचपन की बात लिखी है कि कलकत्ता की सड़कों पर प्रातः काल शासित जातियों के बच्चे पात्रों में पानी लिए ब्राह्मण के पैर धोने के लिए घंटों प्रतीक्षा किया करते थे। वे पैर धोकर यह पानी अपने माता-पिता को देते थे, जो भोजन के लिए उनकी प्रतीक्षा करते रहते थे। ब्राह्मण प्रथम फल प्राप्त करने का सही अधिकारी था। मालाबार में जहां संबंधम् विवाह प्रथा प्रचलित थी वहां शासित जातियां, जैसे नायर, अपनी कन्याओं को ब्राह्मण द्वारा रखैल बनाए जाने को अपनी इज्जत समझते थे।

किसी अन्य वर्ग को अपने साथ जोड़े बिना अपनी शासकीय श्रेष्ठता का पद बनाता क्योंकि उनकी जनसंख्या बहुत कम है।

इतिहास से स्पष्ट है कि ब्राह्मण सदैव उन्हीं दूसरे वर्गों को अपने से सम्बद्ध करते रहे हैं जिन्हें वे शासक जातियों के समान स्तर देने को तैयार होते थे।

वह इस शर्त पर कि वे शासक जातियां उनके अधीन होकर उन्हें सहयोग देने को तैयार हों। प्राचीन काल तथा मध्य काल में ब्राह्मणों ने क्षत्रियों अथवा सैनिक वर्ग से ऐसा संबंध जोड़ा और दोनों ने शासन किया। वास्तव में उन्होंने जनता को कुचल डाला – ब्राह्मणों ने अपनी कलम से और क्षत्रियों ने अपनी तलवार से। इस समय ब्राह्मण ने वणिक वर्ग को अपने साथ जोड़ लिया है, जिसे बनिया कहते हैं। क्षत्रियों से नाता तोड़ कर बनियों से संबंध जोड़ना स्वाभाविक है। आज के व्यापारिक युग में शस्त्र की अपेक्षा धन महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार नया नाता जोड़ने का यही मुख्य कारण है। दूसरा कारण यह है कि राजनैतिक मशीनरी को गतिमान रखने के लिए धन की आवश्यकता है। धन केवल बनियों से मिल सकता है। यह केवल बनिया वर्ग ही है जो श्री गांधी के बनिया होने के कारण कांग्रेस को धन देता है। उस बनिया वर्ग को यह भी मालूम है कि राजनैतिक क्षेत्र में पैसा लगाने से उन्हें काफी लाभ मिलेगा। जिन लोगों को इसमें काफी संदेह हो वे पढ़ें कि 6 जून 1942 को श्री लुई फिशर से श्री गांधी की हुई वार्ता क्या थी। वे श्री फिशर की 'गांधी के साथ एक सप्ताह' नामक पुस्तक के निम्न पैरा को पढ़ कर अपने संदेह को दूर कर सकते हैं :-

"मैंने कहा कि कांग्रेस पार्टी के विषय में मुझे श्री गांधी से कई प्रश्न पूछने थे। मुझे उच्च पदाधिकारी अंग्रेजों ने बतलाया था कि कांग्रेस धनी वर्ग के हाथों में खेल रही है, और बम्बई के उन करोड़पतियों का समर्थन श्री गांधी को प्राप्त है, जो मनचाहा धन उन्हें देते हैं। मैंने उनसे पूछा 'यह कहां तक सत्य है?' उन्होंने साधारण ढंग से कहा – 'दुर्भाग्यवश वे सही कहते हैं। कांग्रेस के पास अपना कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। हमने आरंभ में सोचा था कि प्रत्येक कांग्रेसी सदस्य से चार आना वार्षिक चंदा एकत्र करेंगे और उससे अपना काम चलायेंगे। परन्तु उससे काम नहीं चला।' मैंने उनसे पूछा कि कांग्रेस बजट का कितना अनुपात अमीर भारतीयों द्वारा दिया जाता है? उन्होंने उत्तर दिया– 'संपूर्ण बजट/ उदाहरणार्थ इस आश्रम में जितना हम खर्च करते हैं, उनसे कम धनराशि में हम गरीबी के साथ गुजर कर सकते थे। परन्तु हम ऐसा नहीं करते और खर्च के लिए सारा धन हमारे धनवान मित्रों से मिलता है।"

यही कारण है कि शासक जातियों की स्थिति से बनिया वर्ग को निकालना ब्राह्मण के लिए असंभव बात है। वास्तव में ब्राह्मणों ने बनिया वर्ग से केवल काम-चलाऊ नहीं बल्कि गहरा संबंध जोड़ रखा है। परिणाम यह है कि आजकल

तालिका-1 मद्रास प्रेसीडेंसी

जातियां		अनुमानित जनसंख्या लाखों में	जनसंख्या का प्रतिशत	संपूर्ण राजपत्रित पदों (2200) में से प्राप्त संख्या	की गई नियुक्तियों का अनुपात	अराजपत्रित पद			
						सौ रुपये से अधिक वाले कुल पद 7500		35 रु. से अधिक वाले पद 20782	
						नियुक्त पदों की संख्या	नियुक्त किये गये पदों का प्रतिशत	नियुक्त पदों की संख्या	नियुक्त किये गये पदों का प्रतिशत
1		2	3	4	5	6	7	8	9
ब्राह्मण		15	3	820	37	3280	43.73	8812	42.4
ईसाई		20	4	190	9	750	10	1655	8.0
मुसलमान		37	7	150	7	497	6.63	1624	7.8
गैर ब्राह्मण	दलित वर्ग	70	14	25	1.5	396	0.52	144	0.69
	आगे बढ़े गैर-ब्राह्मण	113	22	620	27	2543	33.9	8440	40.6
	पिछड़ा वर्ग	245	50	50	2				
एशिया के बाहर के एंग्लोइंडियन						372	5.0	83	0.4
अन्य जातियां						19	0.5	24	0.11

तालिका - 2
प्रान्तीय विधान सभाओं में जातियों के आधार पर कांग्रेस सदस्यों का वर्गीकरण

प्रांत	ब्राह्मण	गैर-ब्राह्मण	अनुसूचित जातियां	अवर्णित	योग
आसाम	6	21	1	5	33
बंगाल	15	27	6	6	54
बिहार	31	39	16	12	98
सी.पी. (मध्य प्रांत)	28	35	7	-	70
मद्रास	38	90	26	5	159
उड़ीसा	11	20	5	-	36
संयुक्त प्रांत	39	54	16	24	133

तालिका - 3
प्रांतीय विधान सभाओं के अनुसार कांग्रेस सदस्यों का व्यवसायनुसार वर्गीकरण

प्रांत	वकील	डॉक्टर	भूस्वामी	व्यापारी	निजी कर्मचारी	ऋणदाता महाजन	शून्य	अवर्णित	योग
आसाम	16	2	2	1	-	-	3	9	33
बंगाल	9	2	16	5	2	-	16	4	54
बिहार	14	4	56	6	3	-	1	14	98
सी.पी. (मध्य प्रांत)	20	2	25	10	-	-	8	5	70
मद्रास	52	2	45	18	2	1	3	36	159
उड़ीसा	8	1	17	4	4	1	1	-	36

तालिका - 4
कांग्रेसी प्रांतों में मंत्रिमंडल का गठन

प्रांत	मंत्रिमडल में मंत्रियों की संख्या	गैर-हिन्दू मंत्रियों की संख्या	मंत्रियों में हिन्दू मंत्रियों की संख्या				
			कुल योग	ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित जातियां	मुख्यमंत्री
आसाम	8	3	5	-	-	शून्य	ब्राह्मण
बंगाल	4	1	3	-	-	1	ब्राह्मण
बम्बई	7	2	5	3	2	शून्य	ब्राह्मण
सी.पी. (मध्य प्रांत)	5	1	4	3	1	शून्य	ब्राह्मण
मद्रास	9	2	7	3	3	1	ब्राह्मण
उड़ीसा	3	शून्य	3	-	-	-	-
संयुक्त प्रांत	6	2	4	4	शून्य	शून्य	ब्राह्मण

तालिका - 5
कांग्रेस प्रांतों में संसदीय सचिवों का वर्गीकरण

गैर हिन्दू पार्लियामेंटरी सचिवों की संख्या	हिन्दू पार्लियामेंटरी			
	योग	ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित जातियां
शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य
शून्य	8	2	5	1
शून्य	6	1	5	शून्य
शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	–
1	7	3	4	1
शून्य	3	–	–	शून्य
1	11	2	8	1

तालिका - 6
शिक्षा के आधार पर कांग्रेस में ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों की संख्या का वर्गीकरण

प्रान्तीय विधान सभा	जातियां	योग	ग्रेजुएट	बिना ग्रेजुएट	हाई स्कूल कर्मचारी	अशिक्षित महाजन	अवर्णित
आसाम	ब्राह्मण	6	5	1	–	–	–
	गैर-ब्राह्मण	21	15	2	–	1	9
बंगाल	ब्राह्मण	15	14	1	–	–	–
	गैर-ब्राह्मण	27	21	4	–	1	7
	अनुसूचित जातियां	6	3	–	1	2	–
बिहार	ब्राह्मण	31	11	5	8	4	3
	गैर-ब्राह्मण	39	23	4	3	8	13
	अनुसूचित जातियां	–	1	1	4	10	–
सी.पी. (मध्य प्रांत)	ब्राह्मण	39	15	–	2	9	2
	गैर-ब्राह्मण	54	15	–	2	17	1
	अनुसूचित जातियां	–	1	–	–	6	–
मद्रास	ब्राह्मण	38	16	2	3	4	13
	गैर-ब्राह्मण	90	31	3	1	7	61
	पिछड़ा वर्ग	–	1	–	–	–	–
उड़ीसा	ब्राह्मण	11	6	1	–	3	1
	गैर-ब्राह्मण	20	7	3	2	7	1
	अनुसूचित जातियां	5	–	–	–	5	–

भारत में शासक जातियां ब्राह्मण-क्षत्रिय के बजाए ब्राह्मण-बनिया हैं।

भारत में शासक जातियां कौन हैं, इस विषय में काफी कुछ कहा जा चुका है। अगला प्रश्न यह है कि 1937 के प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव में शासक जातियों की क्या उपलब्धियां रहीं।

1937 के चुनावों का आधार ऐसा मताधिकार था, जो न तो सार्वभौमिक था और न ही वयस्क मताधिकार। फिर भी उससे उन वर्गों को भी मताधिकार मिला, जो शासक जातियों में नहीं आते। यह निश्चित रूप से उनसे तो अधिक व्यापक था, जैसा 1937 तक प्रचलित मतदान अधिकार था। ऐसे मताधिकार पर आधारित चुनाव यह जानने के लिए अच्छा मापदण्ड है कि शासक जातियों की कितनी-कितनी उपलब्धियां थीं।

दुर्भाग्य से भारत के किसी प्रकाशक ने डोडस पार्लियामेंटरी मैनुअल जैसा संस्करण नहीं छापा है। परिणामस्वरूप कांग्रेस के टिकट पर चुने गए विधायकों की जाति, व्यवसाय, शिक्षा और सामाजिक स्तर के बारे में विवरण उपलब्ध नहीं है। यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण है कि 1937 में चुने प्रांतीय विधानमंडलों के सदस्यों पर मैंने इन बिन्दुओं पर आवश्यक सूचना एकत्र करने पर विचार किया। मैं प्रत्येक सदस्य के विषय में संक्षिप्त सूचना प्राप्त करने में सफल हो गया हूं। बहुत से ऐसे हैं, जिन्हें मैंने अनावश्यक जान कर छोड़ दिया है। परन्तु मुझे विश्वास है कि जो सूचनाएं मैंने एकत्र की हैं, उनसे कुछ निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए कि 1937 के चुनावों में शासक जातियों को कितनी सफलताएं मिलीं, तालिका संख्या 2 देखनी होगी जिसमें ब्राह्मण का बनियों (जमींदार और महाजन) और गैर-शासक जातियों को अनुसूचित जातियों से अनुपात दर्शाया गया है, जो कांग्रेस के टिकट पर प्रांतीय विधानमंडलों के लिए चुने गए थे।

जिन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि हिन्दुओं की कुल जनसंख्या में ब्राह्मणों का अनुपात कितना कम है, उन्हें इस बात का अहसास नहीं होगा कि चुनावों में ब्राह्मणों को कितना अधिक प्रतिनिधित्व मिला। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्राह्मणों को उनकी संख्या की अपेक्षा अत्यधिक प्रतिनिधित्व मिला।

जो यह जानना चाहते हैं कि संपन्न वर्ग बनिया, व्यापारी और जमींदार को कितना प्रतिनिधित्व मिला वे तालिका संख्या 3 देखें। (पिछले पृष्ठ पर) इससे पता चलेगा कि बनियों, व्यापारियों और जमींदारों का अनुपात उनकी संख्या से कितना भिन्न है।

1937 में हुए चुनावों के बाद बने विधानमंडलों में शासक जातियों की यह स्थिति है। यह कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर शासक जातियां विधानमंडलों में अल्प संख्या में हैं। इसके संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि शासक जातियों का वर्चस्व विधानमंडलों में संख्या के परिप्रेक्ष्य में न देखा जाए, बल्कि यह देखा जाए कि कार्यपालिका में वे कितनी प्रशासनिक शक्ति पा जाते हैं। मंत्रियों के वर्ग समूह के विषय में बहुत स्पष्ट सूचना है, जो तालिका संख्या 5 और 6 में मौजूद है। (पिछले पृष्ठ पर) तालिकाओं पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि मंत्रिमंडल में प्रमुख शासक जाति ब्राह्मण अत्यधिक स्थान पाने में सफल रही है। सभी हिन्दू प्रांतों में प्रधानमंत्री ब्राह्मण थे। सभी हिन्दू प्रांतों में यदि गैर-ब्राह्मण मंत्री शामिल भी किए गए, तो भी ब्राह्मण बहुसंख्या में थे, यहां तक कि संसदीय सचिव भी ब्राह्मण थे।

दुर्भाग्य से भारत के किसी प्रकाशक ने डोडस पार्लियामेंटरी मैनुअल जैसा संस्करण नहीं छापा है। परिणामस्वरूप कांग्रेस के टिकट पर चुने गए विधायकों की जाति, व्यवसाय, शिक्षा और सामाजिक स्तर के बारे में विवरण उपलब्ध नहीं है। यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि 1937 में चुने प्रांतीय विधानमंडलों के सदस्यों पर मैंने इन बिन्दुओं पर आवश्यक सूचना एकत्र करने पर विचार किया। मैं प्रत्येक सदस्य के विषय में संक्षिप्त सूचना प्राप्त करने में सफल हो गया हूं।

अब तक जो कुछ कहा गया है, उनसे दो बातें उभर कर सामने आती हैं। पहली तो यह कि भारत में एक सुपरिभाषित शासक वर्ग है, जो निम्न शासित जातियों से विशिष्ट और भिन्न है। दूसरी बात यह है कि शासक जातियां इतनी शक्तिशाली हैं कि 1937 के चुनावों में कम संख्या में चुने जाने पर भी उन्होंने आसानी से सत्ता हथिया ली और शासित जातियों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब मेरे लिए केवल अपना पक्ष रखने के लिए जो बिंदु बताने के लिए बच रहा है, वह है यह बताना कि 1937 के चुनावों में कांग्रेस शासक जातियों के प्रतिनिधियों की विजय के लिए कहां तक जिम्मेदार थी। मुझे यकीन है और मैं निस्संदेह यह प्रमाणित कर दूंगा कि कांग्रेस निम्न वर्ग पर शासक जातियों का प्रभुत्व बनाने के लिए जिम्मेदार है। यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस का इससे कुछ लेना देना नहीं है। यदि कांग्रेस इसके लिए उत्तरदायी भी है तो यह मात्र संयोग था और कांग्रेस का इरादा शासक जातियों की जीत और प्रभुत्व जमाने में मदद करना ही था। ■

(शेष अगले अंक में)

लोकतंत्र के महान हस्ताक्षर डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

■ डॉ. आर.एस. कुरील, प्रो. सी. डी. नायक

डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन लोकतंत्र के लिये समर्पित रहा। उनके लिये लोकतंत्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और व्यक्ति के जीवन की कला तथा एक नैतिक न्याय- व्यवस्था, सदाचार का वैश्विक साम्राज्य, और संविधानिक विधि का स्थायी अनुशासन की पद्धति रही है। प्रस्तुत आलेख में संबंधित विषय के कुछ पहलुओं पर उनके स्पष्ट विचार प्रस्तुत हैं।

अवाम, लोकतंत्र का आधार :

अवाम से अभिप्राय ऐसे बहुसंख्यक श्रमिक, शिल्पकार, बुद्धिजीवी, कृषक और उत्पादक सामाजिक वर्ग से है, जो अपने श्रमाधिक्य से संपूर्ण सामाजिक विलासिता के भार को सहन करते हुये विनष्ट हो रहा है किन्तु अपने परिश्रम का न्यायोचित लाभ उठाने की प्रतीक्षा में निरंतर संघर्षरत है।

अवाम को उनकी इस भयानक लड़ाई में आगे की विकास सीढ़ी पर पहुंचाने के लिये रहबर की भूमिका में योगदान देने वाली विभूति के रूप में डॉ. अम्बेडकर धन्य हैं, और महान है उनका जीवन और कृतित्व जिसने उनके संपर्क में आने वाले हर व्यक्तित्व को उज्ज्वल भविष्य की धरोहर का स्वामित्व प्रदान किया और कर रहा है।

अवाम का भावी विकास डॉ. अम्बेडकर के विचार और दर्शन को सही भावार्थ में लेने पर निर्भर है। उनके अभियान को निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त किया जा सकता है :

शब्द के इंसान लेकर आ गया मैं, अर्थ का ईमान लेकर आ गया मैं
वक्त की परछाइयों को मोड देने, क्रांति का अभियान लेकर आ गया मैं।

अवाम की उपलब्धि इसी बात में है कि वह लंबे अर्से के बाद अपने में से किसी एक को रहबर के गुणों से अभिभूत कर अगली सामाजिक विकास सीढी लांघे और जब वह ऐसी शख्सियत पैदा करे तो वह भी लंबे अर्से तक अपनी ऊर्जा का लाभ उन्हें भेंट करता रहे।

अम्बेडकर अवाम को जीवन के प्रति उत्साहित करने वाले दर्शन के समर्थक रहे। उन्होंने अपने शैक्षणिक विचारों से अवाम के सुप्त क्रियाशील भीतरी स्रोतों को अभिव्यक्त कर उन्हें उपयुक्त ऊर्जा में प्रवर्तित किया था।

उन्होंने बताया कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रांति का मूलाधार शिक्षा है। डॉ. अम्बेडकर के सभी शैक्षणिक विचारों का सार ''सीखो, संगठित हो और संघर्ष करो'' के तत्व में निहित है।

शैक्सपिअर को उद्धृत करते हुये डॉ. अम्बेडकर कहते थे, ''हर मनुष्य के आयुष्य में जब अवसर की लहर आती है तो उसका सम्यक प्रकार से उपयोग करने के बाद उसे वैभव प्राप्त होता है। वे कहते थे, ''माता-पिता संतान को जन्म ही नहीं बल्कि कर्म भी देते हैं। वे अपनी संतान के जीवन में दिशा दे सकते है''।

इस बात को ध्यान में रख कर हम सभी को बालकों की शिक्षा के साथ-साथ बालिकाओं की शिक्षा के लिये भी प्रयास करना चाहिये ताकि समाज की प्रगति द्रुत गति से हो सके।

सन् 1986 में भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति की घोषणा की थी। उसके अनुसार भारतीय लोगों में साक्षरता का अंतर लिंग-भेद और जाति-भेद के उच्च और निम्न वर्ग के क्रम में असमान प्रतीत होता था। सवर्ण पुरुष सब से ज्यादा साक्षर, महिला पुरुष से कम साक्षर, अनुसूचित जाति महिलाओं से कम साक्षर और अनुसूचित जमात सबसे कम साक्षर अर्थात् उनकी साक्षरता का

प्रतिशत क्रमशः 36, 24, 22 और 16.1 था। डॉ. अम्बेडकर सामुदायिक शिक्षा के प्रणेता थे। वे चाहते थे कि लोगों की प्रभु सत्ता पर संचालित प्रजातन्त्र में अमीर वर्ग के बच्चों के लिये शाही विद्यालय की व्यवस्था होना और गरीब बच्चों के लिये कोई स्कूल ही न होना असह्य दुर्व्यवस्था है। बुद्ध ने अविद्या में ही सभी मानवीय प्रश्नों के मूल को तलाशा था। फुले ने तो कह दिया था कि ''विद्या बिना मति नहीं, मति बिना नीति नहीं, नीति बिना गति नहीं, गति बिना वित्त नहीं, वित्त बिना शूद्र गिरा, इतना अनर्थ एक अविद्या ने करा!'' लोक शिक्षक गाडगे महाराज और लोक शिक्षिका सावित्रीबाई फुले के शैक्षणिक विचार उक्त कथन से एकदम मिलते-जुलते हैं।

गाडगे जी कहते थे कि शिक्षाविहीन मानव पत्थर है, और सावित्रीबाई का वचन था : शूद्रों को बताने योग्य एक ही मार्ग यही कि शिक्षा से है मनुष्यत्व, पशुत्व नहीं।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार शिक्षा के परिणामस्वरूप स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मोद्धार से क्रमशः बंधुत्व, समानता और स्वतंत्रता के मूल्य प्राप्त होने चाहिये। शिक्षा यानी परिवर्तन यह उनके शैक्षणिक विचारों का मुख्य सूत्र रहा है। 13 जून 1953 को रावळी कॅम्प, मुंबई की सभा में संबोधित करते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, ''हम लोग शिक्षित हुये यानी सब कुछ हो गया ऐसी बात नहीं है। शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य का शील भी सुधरना चाहिये, उसके बिना शिक्षा का मूल्य शून्य है। ज्ञान तलवार की भांति है, यदि किसी आदमी के पास तलवार है तो उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करना उसके सदाचार पर निर्भर करेगा। वह उस से किसी की जान भी लेगा या किसी की जान बचा भी लेगा। ज्ञान भी ऐसा ही है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि इससे काम नहीं चलेगा कि शिक्षित मनुष्य केवल अपने उदर-भरण में ही लगा रहे। जिन्हें स्वार्थ के अलावा कुछ दूसरा दिखता ही नहीं है वे किंचित भी परार्थ कर नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति मात्र शिक्षित होने से क्या लाभ? समाज का वर्णों में विभाजन व्यवसाय के उद्देश्य से हुआ है। परंतु ज्ञान रोजगार का प्रश्न हो ही नहीं सकता। ज्ञान जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक है। उसके बिना हमारा नुकसान होता है।[1] इस मापदण्ड से वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति का पीठ किस प्रकार मानवीय चूंचे निर्माण करने का केन्द्र बन गया, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं।

गाडगे जी कहते थे कि शिक्षाविहीन मानव पत्थर है, और सावित्रीबाई का वचन था : शूद्रों को बताने योग्य एक ही मार्ग यही कि शिक्षा से है मनुष्यत्व, पशुत्व नहीं।

आर्थिक लोकतंत्र

नीचे सिर झुकाकर चलने वाले हजारों भेड़ों के विशाल समूह की अपेक्षा वीरता की वृत्ति रखने वाला सिंह का समूह बेहतर होता है।

डॉ. अम्बेडकर

डॉ. अम्बेडकर ने बताया कि ''भारत ने इंग्लैंड के लिये आर्थिक रूप से जो प्रचंड योगदान किया वह जितना आश्चर्य चकित करने वाला है, उतना इंग्लैंड ने भारत के लिये जो नगण्य आर्थिक योगदान किया वह विस्मयकारक है। ब्रिटिश सरकार द्वारा कानून और शिक्षा द्वारा प्रस्थापित पाश्विक शांति का आर्थिक रूप से यतीम किये गये भारतीयों के लिये कोई उपयोग नहीं था।'' डॉ. अम्बेडकर के मार्गदर्शक प्रो. सेलिग्मन ने इसे ''विस्तृत और गहरी मीमांसा'' कहा था। उनका *रुपये की समस्या* नामक ग्रंथ आज भी प्रासंगिक है। 1926 में रिजर्व बैंक के स्थापनार्थ जो हिल्टन यंग कमिशन नियुक्त हुआ था उसके सामने अपना साक्ष्य देते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, ''चलन निर्माण करने वाली संस्था की चलन निर्माण क्षमता पर परिणामकारक प्रतिबंध होना आवश्यक है। अनिर्बाध चलन पूर्ति और बेहिसाब मूल्य वृद्धि के कारण आर्थिक स्थिरता खतरे में आ सकती है''।[2] ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास बयान करते समय डॉ. अम्बेडकर ने शासन की नीतियों में सप्ताह-सप्ताह के सुधार पर टिप्पणी करते हुये उन्होंने कहा था कि, ''संयुक्त कुटुंब पद्धति में कुटुम्ब प्रमुख जिस प्रकार प्रत्येक सदस्य के नाम से बैंक में खाता खोलता है, उसी प्रकार सरकार की व्यवस्था थी[3]।

बौद्ध धर्म तथा मार्क्सवाद, गांधी और कांग्रेस ने अछूतों के लिये क्या किया, और जातिभेद निर्मूलन में उन्होंने बताया कि सामाजिक और धार्मिक शोषण भी आर्थिक शोषण के समान ही घातक होता है, ''अस्पृश्यता केवल धार्मिक रचना न होकर वह गुलामगिरी से भी भयानक आर्थिक रचना है तथा वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन की नहीं बल्कि श्रमिकों के विभाजन की व्यवस्था थी।[4]

छोटी जोतों की चकबंदी करने हेतु डॉ. अम्बेडकर ने फ्रांस और इटली में विद्यमान सामूहिक खेती पद्धति और राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया को अनुकरणीय बताया था। उत्पादन साधनों को सामूहिक स्वामित्व में करने के बाद उन्होंने खेती पद्धति (उत्तर भारत की जमींदारी प्रथा की भांति)[4] और वतन पद्धति (बेगार प्रथा की भांति) को समाप्त करने वाले दो विधेयक मुंबई विधान सभा में प्रस्तुत किये थे। जोतों की समाप्ति हेतु एक विधेयक दिनांक 15 सितम्बर 1937 को मुंबई विधान सभा में प्रस्तावित किया था। हालांकि इस से पहले 1927 में श्री एफ. जी. एच. ॲन्डरसन ने मुंबई विधान सभा में अल्पभूधारक मदद विधेयक प्रस्तुत किया था। इस विधेयक में एक निश्चित आकार

से कम जमीन धारणा पर प्रतिबंध और दण्ड की व्यवस्था थी। छोटे किसानों को छोटी जोतों से वंचित कर भूमिहीन मजदूर बनने से मुक्ति दिलाने हेतु उन्होंने सामूहिक कृषि की अनुशंसा की।

अर्थशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान रॅगनर नर्क्स के प्रछन्न बेरोजगारी और डॉ. अम्बेडकर की अतिरिक्त श्रमिक की संकल्पना में अत्यधिक समानता है। आर्थिक जोत से उनका अभिप्राय ऐसे उत्पादक खेत से था जिसकी निवेशित व्यय की पूर्ति हो जाने के बाद शेष उत्पादन की राशि पर एक परिवार अपना खर्च चला सके।[5]

भारत में छोटी जोतें और उनके उपाय में उन्होंने (1918) भारतीय कृषि को बुनियादी उद्योग बनाने और औद्योगिकरण से बेरोजगारों का कृषि भूमि पर पड़ा अतिरिक्त भार अन्य उद्योगों में समायोजित कर उनको रोजगार उन्मुख और उत्पादक बनाने पर अधिक जोर दिया। 1950 से भूसुधार कानून को भारत के हर राज्य में लागू करना आर्थिक क्षेत्र में एक बहुत बड़ा परिवर्तन था।

उनका राज्य समाजवाद प्रजातंत्र का आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक दर्शन है। वह सहकारी कृषि, औद्योगिकरण तथा सामुदायिक कृषि से संलग्न है। आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ नहीं है, इसलिये डॉ. अम्बेडकर ने संवैधानिक स्टेट सोशलिज्म के एक अंग के रूप में सामुदायिक कृषि की अनुशंसा की थी। उन्होंने विखंडित और छोटी जोतों के लिये उपाय के रूप में सहकारी कृषि की सिफारिश की थी। उन्होंने भारतीय कृषि सुधार के लिये कृषि पर पड़े अतिरिक्त मनुष्य बल के भार को गैर कृषि क्षेत्र में स्थानांतरित करने हेतु औद्योगिकरण का जो उपाय बताया था वह सामाजिक न्याय की दृष्टि से उचित है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता है भले ही वह शहरों में उतनी तीव्र नहीं है।

1946 में डॉ. अम्बेडकर ने अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिषद की ओर से संविधान समिति को *राज्य और अल्पसंख्यक* नामक एक मसौदा प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने कृषि जमीन को बीमा और मूलभूत उद्योगों की तरह शासन के स्वामित्व में रखने की बात कही थी। वह शासन द्वारा सामाजिक और आर्थिक मामलों में न्याय के हित में हस्तक्षेप चाहते थे। उनका मानना था कि यदि शासन ने सामाजिक आर्थिक क्रियाकलापों का नियमन नहीं किया तो वह निजी मालिकों को करना पड़ेगा और ऐसा करते समय वे अपनी आजादी का उपयोग दूसरों पर अधिसत्ता स्थापित करने के लिये भी करेंगे। उस परिस्थिति में जमींदार भी कुलों पर जबरदस्त जमीन भाड़ा थोपेंगे और पूंजीपति भी कामगारों के काम करने के घंटे बढ़ायेंगे और उनके वेतन कम करेंगे। अर्थात् इससे राजनीतिक प्रजातन्त्र के मूलभूत सिद्धान्त यानी स्वयंभू व्यक्ति, अविछिन्न मूलभूत अधिकार, संवैधानिक अधिकार का बिना शर्त लाभ, और शासन संस्था द्वारा दूसरों पर लादने योग्य सत्ता का निजी व्यक्ति के हाथों में अहस्तांतरण को ही क्षति पहुंचेगी।

जोतों ने अपनी स्वाधीनता का उपयोग छोटे भूधारकों का शोषण करने में किया था और उससे मुंबई प्रांत में अशांति फैल चुकी थी। अत: जोतों का अन्त करना उस समय के भूमि सुधार की मांग थी, जिसे बाबासाहेब ने पूरी करने की चेष्टा की थी।[6]

डॉ. अम्बेडकर के राज्य समाजवाद में व्यक्ति उद्देश्य है। व्यक्ति के कुछ अधिकार अहस्तांतरणीय है। इसकी गारंटी संविधान को देनी चाहिये। किसी भी व्यक्ति को अपनी सुख-सुविधा का उपयोग करते हुये अपने संवैधानिक अधिकार की तिलांजली देने का अवसर नहीं आना चाहिये और शासन ने किसी भी निजी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों पर आधिपत्य करने का अधिकार नहीं देना चाहिये।

जनता नामक पाक्षिक में दिनांक 7 नवंबर 1938 को प्रकाशित अपने एक साक्षात्कार में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि वे एक मुक्त समाजवादी हैं। जातिभेद निर्मूलन को चाहने वाले समाजवादी डॉ. अम्बेडकर ने लिखा था कि ''भारतीय समाजवादी यूरोप के समाजवादियों के कदमों पर कदम रखकर भारतीय परिस्थिति पर भी आर्थिक सिद्धान्त लागू करने की चेष्टा करते हैं। धर्म भी एक बहुत बड़ी प्रेरक शक्ति है, इसके प्रति समाजवादियों की उपेक्षा दृष्टि रही है।

डॉ. अम्बेडकर को प्रजातन्त्र में दो बातें अभिप्रेत थीं। पहली बात मानवीय वृत्ति की है। यह वृत्ति समाज के अन्य सदस्यों के प्रति समानता और आदर से देखने की होनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि समाज की सरंचना में सख्त बंधन नहीं होने चाहिये, अन्यथा प्रजातन्त्र अधूरा रहेगा। अलगाववाद और एकाकीपन प्रजातन्त्र व्यवस्था के विसंगत गुण हैं, क्योंकि उनकी परिणति विशेषाधिकार संपन्न अल्प और अधिकार विपन्न बहुसंख्य वर्गों में होती है। यही उनके राजनीतिक समाजशास्त्र का प्राण है।

इस समाजवाद में सामाजिक संघर्ष के कारकों में धन की तरह धर्म पर भी बल दिया गया है। इस बात में डॉ. अम्बेडकर का समाजवादी सिद्धान्त 1917 की रशिया की राज्यक्रांति, उसके 8 वर्ष के बाद भारत में स्थापित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, 1926 में स्थापित 'लाहौर नौजवान सभा', 1928 में प्रस्थापित 'नौजवान भारत सभा', कॉमरेड एम. एन. राय, 1934 में आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण प्रभृति मार्क्सवादी; श्री अशोक मेहता जैसे फेबियन समाजवादी; डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे गांधीवादी; युसफ मेहर अली और संपूर्णानन्द जैसे राष्ट्रवादी और मिनू मसानी जैसे ट्राट्स्कीवादियों, कॉ. श्रीपाद अमृत डांगे, बी. टी. रणदिवे, नंबुद्रिपाद, कॉ. श्रीनिवास, कॉमरेड सरदेसाई प्रभृति विद्वानों से विशेष और अनोखा है।

दु:खियों के आंसू पोंछने के लिये तुम्हारे नयन तरसने चाहिये। दीन-दु:खियों की सेवा के लिये तुम्हारा हृदय पसीजना चाहिये। संकट ग्रस्त लोगों की रक्षा के लिये तुम्हारी भुजायें फड़कनी चाहिये।

-डॉ. अम्बेडकर

1904 में रामजी मुंबई आकर परेल की एक श्रमिक कालोनी में रहने लगे। भीम ने मुंबई में एलफिन्स्टन हाईस्कूल में दाखिला लिया और वहीं से उन्होंने 1907 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1912 में एलफिन्स्टोन कॉलेज से अंग्रेजी और पर्शियन आदि विषयों को लेकर और बड़ौदा महाराज सयाजी राव की वित्तीय सहायता से पढ़ाई कर वे ग्रेजुएट परीक्षा में उत्तीर्ण हुये। उसके पश्चात् भीम राव की बड़ौदा सैनिक दल में लेफ्टीनेंट के पद पर नियुक्ति हुई। 1913 में बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड द्वारा पिछड़े वर्ग के लिये संस्थापित छात्रवृत्ति के हासिल होने पर भीम राव कोलंबिया विश्वविद्यालय, अमेरिका गये और वहीं उनका संपर्क जॉन डिवि, एडविन सेलिग्मन और ए. ए. गोल्डनवेजर जैसे सुविख्यात दार्शनिक और प्रोफेसरों के साथ आया और उन्होंने *भारत में जातियां : उनकी संरचना, व्युत्पत्ति, और विकास* नामक एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।

1916 में डॉ. अम्बेडकर ने लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस में प्रवेश प्राप्त किया और उनका संपर्क श्री सिडनी वेब, बेट्रिस वेब, एडविन केनन, जे. ए. हाबसन, एल. टी. हाबहाउस प्रभृति विद्वान दार्शनिकों से हुआ। डॉ. अम्बेडकर बार-एट-लॉ की उपाधि हेतु ग्रेज इन नामक विधि संस्थान में भी प्रविष्ट हुये परंतु शिष्यवृत्ति की शर्तो के अनुसार छात्रवृत्ति का नियुक्त समय बीत जाने के पश्चात् उन्हें अब अपनी सेवा बड़ौदा राज्य को अर्पित करना लाजमी हो गया। अत: डॉ. अम्बेडकर अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर 1917 में भारत वापस आ गये। वह बड़ौदा में अकाउंटेन्ट जनरल के आफिस में प्रोबेश्नर की हैसियत से काम करने लगे। परंतु दफ्तर के अन्दर और बाहर भी तत्कालीन दकियानूसी समाज ने डॉ. अम्बेडकर के साथ एक अछूत का सलूक किया। फलत: उन्हें वह स्थान जल्दी ही छोड़ कर वापस बंबई जाना पड़ा। बंबई लौट कर कुछ दिन डॉ. अम्बेडकर को बेरोजगारी में ही काटने पड़े। बाद में वे सिडेनहेम कॉलेज में राजनीति-अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुये।

1919 में जब मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार चल रहा था तो मताधिकार के विषय पर डॉ. अम्बेडकर ने अपना अभिमत साउथबरो कमिटी के समक्ष रखा था। उनका मत था कि जब 1916 से ही मुसलमानों को पृथक मताधिकार सरकार द्वारा मान्य हो गया था तो सबसे अधिक पिछड़े दलित वर्ग के लिये पृथक मताधिकार क्यों न बहाल किया जाये।

सन् 1919 में जब मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार चल रहा था तो मताधिकार के विषय पर डॉ. अम्बेडकर ने अपना अभिमत साउथबरो कमिटी के समक्ष रखा था। उनका मत था कि जब 1916 से ही मुसलमानों को पृथक मताधिकार सरकार द्वारा मान्य हो गया था तो सबसे अधिक पिछड़े दलित वर्ग के लिये पृथक मताधिकार क्यों न बहाल किया जाये।

31 जनवरी 1920 को उन्होंने *मूकनायक* नामक एक मराठी पाक्षिक पत्रिका प्रारंभ की। वह अन्याय के खिलाफ मंथन और समीक्षण करने वाला मुखपत्र था। 1920 में उन्होंने कोल्हापुर के छत्रपति शाहू महाराज की छत्रछाया में प्रथम अखिल भारतीय दलित वर्ग संस्था का नागपुर में सम्मेलन कराया और वहां यह ऐलान किया कि दलित वर्गो की मुक्ति उनके अपने प्रयासों से ही संभव है।

सितंबर 1920 में उन्होंने अपने लंदन विश्वविद्यालय की पढ़ाई फिर से आरंभ की। अगले ही वर्ष उन्होंने एम. एससी. की उपाधि प्राप्त की, जो डॉक्टरल शोध के लिये अनिवार्य शर्त थी। उसके बाद उन्होंने उस समय के सर्वश्रेष्ठ अर्थशास्त्र के विद्वान सर एडविन केनन के मार्गदर्शन में रुपये की समस्या पर एक बृहद् शोध प्रबंध लिखा, जिसे बाद में लंदन के ही पब्लिशर, पी. एस. किंग एण्ड सन्स ने 1923 में *रुपये की समस्या, उसकी उत्पत्ति और उसका उपचार* शीर्षक से प्रकाशित किया और उसी प्रकाशक ने अमरीका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से स्वीकृत उनका पहले से ही तैयार *ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त* नामक पीएच. डी. की उपाधि का शोध प्रबंध 1925 में प्रकाशित किया। 1922 में डॉ. अम्बेडकर ने बर्लिन में उच्चतर शोधाध्ययन के लिये तीन माह खर्च किये। उसी वर्ष ग्रेज इन के बार का बुलावा आया। अगले वर्ष वह भारत लौट आये और वहां उन्होंने मुंबई उच्च न्यायालय में वकालत की।

इंदौर के तत्कालीन महाराज मल्हार राव होलकर के एक राज घराने के बाहर की महिला के साथ वैवाहिक संबंध के बारे में उपजे विवाद में महाराजा की वकालत करने, और एक अन्य इंदौर निवासी के एक मंदिर के पास की जमीन के मुकदमें में पैरवी करने के सिलसिले में डॉ. अम्बेडकर इंदौर आये थे। इंदौर

के इन दोनों मामले में उनकी वकालत ने संबंधित पक्षों को जिताकर राहत दिलाई थी।

जून 1925 से मार्च 1928 तक उन्होंने वहां के अकाउन्टेंसी की बाटलीबोई प्रशिक्षण संस्थान में अंशकालीन प्राध्यापक की सेवायें प्रदान कीं। जून 1928 से मार्च 1929 तक वे मुंबई के शासकीय विधि महाविद्यालय के प्राध्यापक रहे।

1924 में उन्होंने बहिष्कृत हितकारणी सभा की स्थापना की, उसके तहत उन्होंने सोलापुर में दलित वर्ग छात्रावास खोला। 1927 में उन्होंने महाड़ सत्याग्रह चलाया और अहिंसा के मार्ग से आम लोगों की तरह अछूतों के अधिकार को भी कुओं, तालाबों आदि पर प्रस्थापित किया, उससे दलितों का हिंदुओं के साथ सीधा संघर्ष छिड़ गया। इतना ही नहीं, 25 दिसंबर 1927 के दिन *मनुस्मृति* का सामूहिक रूप से दहन कर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि अब वे हिंदुओं की गुलामी में नहीं रहेंगे।

3 अप्रैल 1927 से डॉ. अम्बेडकर ने *बहिष्कृत भारत* नामक पाक्षिक चलाया। उनके संघर्ष का यह एक पायदान था। इसी दौरान डॉ. अम्बेडकर ने समाज सुधार और राष्ट्र निर्माण की कटिबद्धता स्वीकार की। अत: उन्होंने मुंबई विधान मंडल में 1927 से 1937 तक कुल 10 वर्ष के कार्यकाल में एक सक्रिय सदस्य की भूमिका निभाई। मुंबई विधान मंडल में उन्होंने गरीबों पर लादे जाने वाले बजट के संबंध में प्रशासन की लापरवाही पर कठोर प्रहार किया।

उनका वक्तव्य अनोखा रहता था। उन्होंने 29 मई और अक्टूबर 1928 में साईमन कमिशन में मुंबई विधान मंडल कमेटी से हटकर उसके एक सदस्य की हैसियत से अपना अलग वक्तव्य दिया कि भारत के संवैधानिक प्रजातंत्र में दलित वर्गों का दृष्टिकोण ध्यान में रखा जाना चाहिये। वहां उन्होंने मुंबई पैतृक व्यवसाय अधिनियम 1874 के संशोधन का विधेयक प्रस्तुत किया।

समाज में एकता स्थापित करने के लिये उन्होंने क्रमश: समाज समता संघ और समता सैनिक दल की स्थापना सितंबर और दिसंबर को 1927 में की।

उन्होंने बहिष्कृत हितकारणी सभा की ओर से शिक्षा में दलित वर्गों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुये वक्तव्य दिया था कि प्रशासन का आधार सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार होना चाहिये। उसी वर्ष उन्होंने दलित वर्ग शिक्षा समाज की स्थापना की और उसके माध्यम से उच्च विद्यालय के दलित छात्रों के लिये पनवेल, ठाणे, नासिक, पुणे और धारवाड़ में छात्रावास खोले।

1930 में नासिक में ही कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह में उन्होंने दलित वर्ग के धार्मिक हितों की रक्षा के लिये अहम भूमिका निभाई और उसी वर्ष नागपुर में आयोजित अखिल भारतीय दलित वर्ग कांग्रेस की अध्यक्षता की। उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के प्रतिकूल रवैये, भारतीय उच्च जातियों का रूढ़िवाद तथा गांधी और कांग्रेस की सनातनी नीतियों पर अपनी आलोचना से प्रहार किया। दूसरी गोलमेज परिषद में उन्होंने गांधी से दलित हितों के रक्षणार्थ लड़ाई मोल ली। उनके विचारों का मायनॉरिटी पैक्ट पर इतना प्रभाव था कि उनके सुझावों का समावेश 1932 के जातीय समझौता तथा 1935 के भारत अधिनियम में भी है, हालांकि गांधी के आमरण अनशन से दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व के स्थान पर संयुक्त प्रतिनिधित्व और आरक्षण से संतोष करना पड़ा।

उन्होंने 24 नवंबर 1930 को जो *जनता* नामक पाक्षिक चलाया था, वह एक वर्ष बाद साप्ताहिक के रूप में चलता रहा, और 4 फरवरी 1956 से *प्रबुद्ध भारत* के नाम से प्रकाशित होता रहा।

भारतीय मताधिकार कमेटी अथवा लोथीयन कमेटी के एक सदस्य की हैसियत से डॉ. अम्बेडकर ने दलितों की प्रतिनिधिक और मताधिकार की स्थिति का जायजा लेने हेतु पूरे भारत का दौरा कर उसका परीक्षण किया।

पूना पैक्ट के बाद एंटी-अन्टचेबिलिटी लीग की स्थापना भी हुई। परंतु डॉ. अम्बेडकर ने पाया कि अछूतों पर हिंदू दमन बरकरार रखने वाली बलात् अवस्था में हुये पूना पैक्ट और हरिजन सेवक संघ यानी एन्टी अन्टचेबिलिटी लीग के द्वारा अछूतों का आत्म-सम्मान दांव पर लगा देख कर डॉ. अम्बेडकर ने 1933 में संघ से अपना इस्तीफा दे दिया।

उन्होंने 17 नवंबर 1932 से 24 दिसंबर 1932 तक के दौरान आयोजित गोलमेज परिषद में हिस्सा लिया, मुंबई के शासकीय महाविद्यालय में जून 1934 में प्रथम अंशकालीन प्रोफेसर के पद पर कार्य किया और 1 वर्ष पश्चात् वहां के प्राचार्य पद को संभाला। 27 मई 1935 में उनकी धर्मपरायण पत्नी रमाबाई का देहांत हुआ। उन्होंने स्वयं 3 पुत्र और 1 पुत्री के निधन का दुख सहा था। रमाबाई ने डॉ. अम्बेडकर के विदेश में अध्ययन करने के दौरान अपना जीवन एकांत और दरिद्रता में बिताकर अब संसार से विदा ली थी।

13 अक्तूबर 1935 को डॉ. अम्बेडकर ने नासिक में येवला की दलित वर्ग की सभा में हिंदू धर्म छोड़ने की बात कही थी। मई 1936 में उन्होंने इस प्रश्न को सुलझाने के लिये एक महार परिषद भी बुलाई। अगले 21 वर्ष तक उन्होंने धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया।

1936 का उनका अत्यंत प्रखर भाषण जात पात तोडक मंडल, लाहौर की सभा के लिये तैयार किया गया था। उसमें व्यक्त विचारों में धर्म पर की गई समीक्षा पर मंडल के संगठक श्री संत राम व अन्य प्रमुख नेताओं को एतराज होने से वह सभा ही रद्द कर दी गई। अत: उस भाषण को बाद में *जातिभेद निर्मूलन* शीर्षक से एक पुस्तिका की शक्ल में छाप दिया गया। डॉ. अम्बेडकर की यह पुस्तिका भारत के मजलूमों के लिये वही कार्य कर रही है, जो काम

कार्ल मार्क्स और एंगल्स के *कम्युनिस्ट घोषणा पत्र* ने विश्व के सर्वहाराओं के लिये किया था। डॉ. अम्बेडकर की हिंदू धर्म की समीक्षा पर गांधी जी भी खफा हो गये थे, क्योंकि उनके लिये वर्ण व्यवस्था में कोई बुराई नहीं थी। उसी वर्ष डॉ. अम्बेडकर ने खेतीहर श्रमिकों की अल्प जोतों से संबंधित खेति पद्धति को मिटाने का विधेयक मुंबई विधान परिषद में प्रस्तावित किया।

इतना ही नहीं, 15 अगस्त 1936 में ही उन्होंने स्वतंत्र मजदूर दल की स्थापना कर 1937 के निर्वाचन में 17 सीटों में से 15 सीटों पर निर्वाचन में जीत हासिल की और 1938 में श्रमिकों के हितैषी के नाते श्रमिक आंदोलन को नियंत्रित करने वाले औद्योगिक श्रम विवाद विधेयक का विरोध भी किया। शासन की युद्ध नीति पर भी उनका एक विशेष दृष्टिकोण रहा, जिस के आधार पर उन्होंने शासकीय प्रयासों को सराहा था।

गांधी और कांग्रेस के सामाजिक सुधार के प्रति उदासीन रहने के फलस्वरूप मुस्लिम लीग ने लाहौर में अपने अलग राष्ट्र पाकिस्तान की मांग की। 1940 में डॉ. अम्बेडकर ने पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन और 1943 में अपने दूसरे भाषण-ग्रंथ *रानाडे, गांधी और जिन्ना* के माध्यम से इस खतरे की ओर इशारा किया था। बार-बार चेतावनी देने पर भी सनातनी समाज के कान में जूं तक नहीं रेंगी। डॉ. अम्बेडकर ने भांप लिया कि यहां का समाज राजनीतिक कम और जातिगत अधिक है। अत: जुलाई 1942 में, जब क्रिप्स मिशन की चर्चा चल रही थी, उन्होंने शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की स्थापना की। भारत के संवैधानिक निर्माण में हिंदू और मुस्लिम राजनैतिक दलों के बीच उस फेडरेशन की भूमिका ऐसी ही अपेक्षित थी जैसी दो बड़े धड़ों के बीच एक संतुलन शक्ति की होती है।

27 जुलाई 1942 में वाइसराय की कार्यकारिणी में पांच साल के लिये श्रम मंत्री के पद पर नियुक्त हो जाने के पश्चात् दिसंबर 1942 में ही डॉ. अम्बेडकर ने पेसिफिक रिलेशन्स कमिटी द्वारा क्युबेक में आयोजित सम्मेलन के लिये *गांधी और अछूतों की मुक्ति* नामक एक शोध पत्र लिखा। इसी समय के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने दलितों का नौकरी में आरक्षण, श्रम विधियां व श्रम कल्याण तथा श्रमिक-उद्योगपति-सरकार की परस्परावलंबी त्रिसूत्रीय योजना, बहुउद्देशीय विकास योजना अर्थात् दामोदर घाटी तथा महानदी परियोजना की व्यापक नीतियां बना ली थीं। संक्षेप में उन्होंने एक कल्याणकारी शासन की नींव रखी हालांकि 1951 में श्री नेहरु ने उन्हें पंचवर्षीय योजना विभाग मंत्रालय सौंपने से इंकार किया था।

अपने पचासवें जन्मदिवस समारोह पर अवाम को संदेश देते हुये डॉ. आंबेडकर ने कहा था, ''मैं प्रजातन्त्र का कट्टर अनुयायी हूं। व्यक्तिगत पूजा प्रजातन्त्र की विरोधी है। अपने इस भारत में राष्ट्रीय नेता को अवतारी पुरुषों के जैसा आदर का स्थान दिया जाता है। भारत के बाहर अन्य देशों में केवल महापुरुषों की ही जयंतियां मनाई जाती हैं। अगर नेता योग्य हुआ तो उस की प्रशंसा, प्रेम और आदर करना कोई हरकत नहीं और उतने में ही उस नेता एवं उसके अनुयायियों का समाधान होना चाहिए, परंतु नेता की देव स्वरूप पूजा करना मुझे कतई पसन्द नहीं। इससे नेता के साथ-साथ उसके अनुयायियों का भी अध:पात होता है। मेरा व्यक्तिगत जन्मदिन मनाया जाना मुझे बिलकुल पसंद नहीं।''

''परन्तु यहां यह सब बताने से कोई लाभ नहीं। संदेश की बजाय मेरे भाइयों को ग्रीक पुराण में लिखित स्रोत की एक कहानी बताऊंगा, जो ग्रीक देवता पर है, जिसे होमर ने लिखा है। प्रसंग इस प्रकार है -

ग्रीस में एक डिमेटर नाम की देवी थी। वह अपनी पुत्री के खोज में घूमते-घूमते केलिओस के राज्य में पहुंची। उस ने दाई का वेश धारण किया था, इसलिए उसे कोई पहचान न सका। रानी मेटोनेरा ने अपने छोटे बच्चे डेमोफून की देखभाल के लिए उस को अपने घर रख लिया। डिमेटर देवी प्रति दिन रात के समय राज महल में सब के सो जाने पर द्वार बन्द करके उस बच्चे को झूले से धीरे-धीरे बाहर निकालती और उसे वस्त्र विहीन कर जलते अंगारों पर रखती थी। शायद श्रोताओं को यह कृत्य क्रूर-सा लगेगा। परन्तु यह वास्तव में वैसा नहीं था। बड़े प्रेम से वह देवी उसे देवता बनाने में लगी थी। क्रमश: उस बालक में जलते अंगारों की ज्वाला सहन करने की शक्ति एवं सामर्थ्य उत्पन्न हो गई। उसका बल बढ़ने लगा। उसमें कुछ तेज, दिव्यत्व एवं असाधारणता के अंश विकसित होने लगे। परन्तु एक रात उस बालक की मां अचानक उस कमरे में पहुंच गई और अपने पुत्र को देवता बनाने का वह प्रयोग देखते ही डिमेटर देवी को धकेल अंगारों में से बालक को शीघ्र उठा लिया। उसका पुत्र उसे मिल तो गया परन्तु साधारण मनुष्य-बालक को असाधारण रूप में न पा सकी।''

यह कहानी बताती है कि अपना भविष्य उज्ज्वल करने हेतु मनुष्य को वर्तमान सुख एवं आवश्यकताओं का भी त्याग करना चाहिये। ऐसा क्यों होता है कि जीवन की दौड़ में भाग लेने का आमंत्रण सब को आता है, परन्तु बहुत थोड़े लोग सफल होते हैं? इस का कारण यह है कि भविष्य की आवश्यकता की पूर्ति हेतु वर्तमान की विलासिताओं का त्याग करने में लगने वाला धैर्य या निर्धार मनुष्य के पास नहीं रहता। इसलिये जीवन की दौड़ में इन्हें बड़प्पन नहीं मिलता।''[7]

बिरले ही पुरुष युग प्रवर्तक होते हैं। जो लोग गरीबी और गुलामी में पैदा होकर गरीबी और गुलामी की जंजीर तोड़ देते हैं वे धन्य हो जाते हैं। बीसवीं सदी के आरम्भ और मध्य में जो राजनैतिक पराधीनता थी उससे मुक्त होने मात्र से सामाजिक स्वाधीनता के ख्वाब पूर्ण नहीं हुये हैं।

विश्व में आज आर्थिक विषमता के साथ-साथ मुक्त बाजार व्यवस्था के जरिये विकसित देशों के द्वारा अविकसित देशों के हित-साधन को बढ़ाने की अपेक्षा उनके शोषण और दमन को और अधिक उग्र किया जा रहा है। नब्बे के दशक में नई आर्थिक नीतियां भारतीय समाज में कार्यान्वित की गईं और उसी के अनुसार बहुराष्ट्रीय निजी कंपनियों ने यहां के उपभोक्ताओं को प्रभावित, यहां के उत्पादकों को प्रताड़ित और यहां के शासन कर्ताओं को दिग्भ्रमित करना आरंभ किया।

परंतु अगतिक हुई विश्व व्यवस्था को सार्वभौमिक हिताय और सार्वभौमिक सुखाय के उद्देश्य से नई जीवन व्यवस्था में प्रवर्तित करने के लिये जिस नैतिक, मानव केंद्रित वैचारिकी और युग प्रवर्तक की जरूरत है, और जिसकी कमी सबको खल रही है, उस पूर्ति हेतु डॉ. अम्बेडकर जैसे कर्मठ रहबर और सम्यक युगद्रष्टा के दर्शन-ज्ञान को आत्मसात करना होगा। क्योंकि विश्व के हर देश की भांति भारत में भी इस दृष्टा के युग प्रवर्तक वैचारिकी से सबसे खतरनाक मानवता मारक मानसिक कोढ़ अस्पृश्यता की बीमारी खत्म होने जा रही है।

अतः एक आवाज से ऐसी प्रार्थना करना चाहिये जिससे लोगों के उद्धार की भावना जागृत हो और ऐसा दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि ''जिन लोगों में अपना जन्म हुआ है उनका उद्धार करना अपना कर्तव्य है, यह जिन्हें मालूम है वे धन्य हैं। परतन्त्रता पर आक्रमण करने के लिये जो अपना तन, मन, धन और यौवन कुर्बान कर देते हैं वे धन्य हैं। मनुष्य को अपनी मानवता पूर्ण रूप से मिलने तक जो अच्छाई-बुराई, सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, शांति-शमसान, संकट-संघर्ष, मान-अपमान, इत्यादि की परवाह न कर सतत संघर्ष करते रहे हैं वे धन्य हैं।''

लोकतंत्र की मारक अस्पृश्यता :

डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं की लेखनी से इस प्रकार बयान किया है। उन्होंने

लिखा है :

''हमारा परिवार मूलतः मुंबई प्रेजीडेंसी के रत्नागिरी जिले के दापोली तहसील (अंबावडे ग्राम) से आया था। ईस्ट इण्डिया कंपनी के बिलकुल आरंभ से मेरे पूर्वजों ने अपना पैतृक व्यवसाय त्याग दिया था और सैनिक सेवा में भर्ती हो गये थे। मेरे पिताजी ने भी परिवार की इस परंपरा का अनुकरण किया और सैनिक सेवा में भर्ती हुये। अपने कैरियर में वे अधिकारी की श्रेणी तक पहुंचे और मेजर सूबेदार के पद पर (महू से) सेवा निवृत्त हुये। अपने सेवानिवृत्त होने के पश्चात् स्थायी रूप से बसने के इरादे से मेरे पिता अपने कुटुंब को लेकर दापोली आये। लेकिन कुछ कारणों से मेरे पिताजी ने अपना मन बदला। अतः वे दापोली छोड़कर सतारा आये और वहां हम 1904 तक रहे।

सतारा में ही मेरी मां (जिसे मैं बय कहता था) का देहांत हो गया था। मेरे पिताजी गोरेगांव में कैशियर का काम करते थे। यह गांव खाटव तहसील में था। यहीं पर मुंबई सरकार ने हजारों की तादाद में भूख से मर रहे लोगों को आजीविका देने के उद्देश्य से तालाब की खुदाई का उपक्रम शुरू किया था। मेरे पिता ने लिख भेजा था कि हम आगामी ग्रीष्म की छुट्टियां उनके पास गोरेगांव में ही बितायें।

रेलगाड़ी से गोरेगांव जाने के लिये सबसे नजदीक मैसूर स्टेशन पड़ता है। वहां पर हम शाम को 5 बजे पहुंचे। सभी यात्री जा चुके थे। हम चार बच्चे प्लेटफार्म पर पिताजी अथवा उनके नौकर, जिसे वे भेजने वाले थे, का इंतजार कर रहे थे। काफी समय बीत गया पर कोई नहीं आया। हमारे सुंदर परिधान देखकर स्टेशन मास्टर को लगा कि हम ब्राह्मण लड़के होंगे। अतः उन्होंने पूछा कि आप कौन हैं। मैंने महार कह दिया। बंबई प्रेजीडेंसी में महार एक अस्पृश्य जाति होती है। यह बात तांगेवालों तक फैल गई। हमें ले जाने के लिये एक तांगेवाला बड़ी मुश्किल से

तैयार हुआ। वह भी इस शर्त पर कि हम उसे दुगुना भाड़ा देंगे और तांगा हम खुद चलायेंगे और स्वयं तांगेवाला गाड़ी के पीछे-पीछे पैदल चलेगा।

शाम के लगभग साढ़े छह बज चुके थे जब हम लोगों ने स्टेशन छोड़ा। मध्य रात्रि भी बीत गई जब मात्र चुंगी नाके तक पहुंचे थे। नाके वाला हिंदू था, उससे पानी मांगा तो उसने साफ इंकार कर दिया। हम वहां भूखे-प्यासे ही सोये। दूसरे दिन सुबह 8 बजे फिर बैलगाड़ी में यात्रा जारी रखी तो गोरेगांव सुबह 11 बजे पहुंचे। हमें देखकर पिताजी को आश्चर्य हुआ। हम ने कहा, ''सूचना भेजने पर भी हमें लेने स्टेशन पर क्यों नहीं आये'' तो उन्होंने पता लगाया कि उन्हें इसकी सूचना मिली ही नहीं थी, जो उनके नौकर की भूल थी।

जब वह घटना हुई तो मैं 9 साल का बालक था। लेकिन उसने मेरे मन पर अमिट छाप छोड़ी है। इस प्रसंग के पूर्व मैं जानता था कि मैं एक अछूत बालक हूं और सभी अस्पृश्य कुछ अप्रतिष्ठा और भेद-भाव के शिकार हैं। मिसाल के तौर पर मैं जानता था कि स्कूल में मैं अपने क्रम के अनुसार अपने वर्ग-सहपाठियों के बीच में नहीं बैठ सकता था और मुझे एक कोने में अकेले ही बैठना पड़ता था। मैं जानता था कि स्कूल में मुझे एक बोरी की चटाई पर अपनी कक्षा से अलग हट कर बैठना पड़ता था और जो फर्राश स्कूल की सफाई करता था वह भी मेरे द्वारा इस्तेमाल की गई बोरी की चटाई को नहीं छूता था। बोरी की चटाई भी मैं प्रति दिन घर से अपने साथ ले कर स्कूल में जाया करता था। स्कूल में अन्य बच्चे प्यास लगने पर अध्यापक की अनुमति से पानी के नल के पास जाते, उसे खोलते और अपनी प्यास बुझाते थे। पर मैं पानी का नल छू नहीं सकता था और जब तक कोई दूसरा स्पृश्य प्राणी मेरे लिये उसे खोल नहीं देता तब तक मैं प्यासा का प्यासा ही रह जाता। अध्यापक ऐसे काम के लिये स्कूल के चपरासी को भेजते पर जब वह उपलब्ध नहीं होता तो मैं बिना पानी के ही रह जाता था। क्योंकि चपरासी नहीं तो पानी नहीं ऐसा नियम बन गया था। मैं जानता था कि घर में कपड़े धोने का कार्य मेरी बहनें करती थीं, इसलिये नहीं कि सतारा में धोबी नहीं थे, अथवा हम धुलाई का खर्चा देने योग्य नहीं थे, बल्कि इसलिये कि हम अछूत थे और कोई भी धोबी अछूत के कपड़े नहीं धोता था। दाढ़ी बनाने और बाल कटवाने का काम मेरी बड़ी बहन करती थी क्योंकि सतारा का कोई नाई अछूत की दाड़ी और बाल नहीं बनाता था। ये सब मैं जानता था। परंतु इस घटना ने तो मेरे दिल को ऐसी चोट पहुंचाई जिसे मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। और उस घटना ने मुझे उस अछूतपन के बारे में सोचने के लिये मजबूर कर दिया जो इस प्रसंग के पूर्व मेरे और अन्य कई स्पृश्य और अस्पृश्यों के लिये एक आम बात थी और आज भी है।''[8]

उनके लेखन में अस्पृश्यता का उल्लेख कई बार हुआ है। अस्पृश्यता का अर्थ है ऐसे सामाजिक संबंध जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से तोड़ने वाले हो। जैसे मनुष्यों में स्वाभाविक रूप से एक साथ बैठने, एक साथ विचार करने, एक साथ निर्णय लेने, एक साथ खान-पान करने, एक दूसरे के गोत्र में शादी-ब्याह करने जैसी बातों में कृत्रिम दूरियां पैदा करना अस्पृश्यता है। अथवा सार्वजनिक तालाबों, कुओं, नदियों, पनघटों, स्कूलों, संस्थाओं, धर्मशालाओं अथवा अन्य किसी भी सामूहिक उपभोग की जगहों को किसी वर्ग के लिये प्रतिबंधित कर देना, अथवा जाति-जाति में अंतर्विवाह करने न देना, समाज के समस्त स्त्री-पुरुष सदस्यों में बराबरी की भावना न रखना और समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा के सिद्धान्त से सार्वजनिक सार्वभौमिक प्रजातंत्रीय जीवन-व्यवस्था को व्यवहार में न अपनाना इत्यादि अस्पृश्यता है।

जिस समाज की दैनंदिन की चर्या अस्पृश्यता के संबंध से निश्चित होती है वह समाज अनगिनत वर्गों और संवर्गों में लिंग, रूप, रंग, वर्ण, भाषा, प्रांत, परंपरा, धर्म आदि के आधार पर विभक्त होता चला जाता है। ऐसे समाज की संरचना पिरामिड की भांति होती है। सबसे ऊपर मुट्ठी भर लोग, और सब से नीचे आम परिश्रमी लोग। सीढ़ी-दर-सीढ़ी के क्रम से कई श्रेणियों में विभक्त क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों की साहसिक, सांपत्तिक और शारीरिक कमाई पर ऐश करने वाले सर्वोपरि अधिकारी ब्राह्मण होते हैं यद्यपि वे भी कई श्रेणियों में विभक्त होते हैं। इतना ही नहीं, हिंदू धर्म शास्त्रोक्त कानून के तहत एक ब्राह्मण मनुष्य कम से कम ब्राह्मणी, क्षत्राणी, वैश्याणी तथा शूद्राणी इन चार-चार महिलाओं के साथ वैधता से यौन संबंध रख सकता है और राजनीतिक, धार्मिक और आचार के नियमों का नियन्ता और न्याय कर्ता भी वही होता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि भले ही कोई अस्पृश्य व्यक्ति हो लेकिन वह भी ब्राह्मण का उपभोग्य पदार्थ होता है।

नीचे के सभी वर्ण, वर्ग या जातियां ऊपर की तथाकथित सर्वश्रेष्ठ जाति की तरह आपस में विभक्त तो हैं परंतु उन्हीं की तरह एक होकर कभी अपना संगठित 'समाज' नहीं बना पाने के कारण पराधीन हैं।

वर्ण-जाति और लिंग के आधार पर बंटे समाज की चौखट से परे एक धर्म या नैतिकता की वरिष्ठता पर आधारित लड़ाई की भी परंपरा है, जिस से आहत वर्ग एक साथ विद्यमान राजनैतिक सत्ता; आर्थिक संपन्नता, शैक्षणिक विकास, सामाजिक प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक गुणात्मकता के बराबरी के हिस्सेदार नहीं हैं और न उनके धर्म एक हैं। ■

(क्रमशः)

(लेखक द्वय सर्वश्री डॉ. आर.एस. कुरील, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, महू, इंदौर में महानिदेशक व श्री नायक अम्बेडकर चेयर प्रोफेसर हैं)

डॉ. अम्बेडकर – महान भविष्य दृष्टा

■ चन्द्रवली

"जीवन में जितनी पूजाएं पूरी नहीं हुई हैं, मैं यह अच्छी तरह समझता हूं कि वे बेकार नहीं गयी हैं। जो फूल विकसित होने से पहले ही सूखकर गिर गये तथा जो नदी रेगिस्तान में अपनी धारा खो दी है, मैं समझता हूं कि वे भी अपना अस्तित्व रखते हैं। वर्तमान जीवन में जो पीछे छूट गया है, जो अधूरा रह गया है, मैं समझता हूं वह भी बेकार नहीं हुआ है। जो मेरा भविष्य है अभी दूर है, वह तुम्हारी वीणा के तारों में बज रहा है, मैं समझता हूं वह भी मिट नहीं गया है।"

उपरोक्त उद्गार नोबल पुरस्कार विजेता श्री रविन्द्र नाथ टैगोर के हैं। जिनका यह मानना है कि संसार में किया हुआ पुरूषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता है। भारत रत्न बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने देश व समाज में नारियों, अछूतों, दलितों, वंचितों एवं तिरस्कृत लोगों के उत्थान के लिए जो कुछ किया है, कहा है, वह मिट नहीं गया है अपितु शत सहस्रमुखी होकर खिल रहा है, सर्वत्र फैल रहा है और फैलता रहेगा। बाबासाहेब द्वारा मानवता, स्वतंत्रता, समता एवं बंधुत्वभाव रूपी आदर्शों से प्रेरित होकर सदियों से पद दलित, तिरस्कृत वंचित एवं शोषित जातियों एवं वर्गों के लिए जो अतुलनीय एवं प्रशंसनीय कार्य किये हैं वह धूमिल दिखते हुए भी धूमिल नहीं हो सकते। 'एक व्यक्ति-एक वोट', बराबरी, जातिधर्म-लिंग व रेस के आधार पर भेदभाव रहित संबंधी जिन राजनैतिक एवं सामाजिक तथ्यों का समावेश भारतीय जनमानस में उनके द्वारा किया गया है वे वर्ण व जाति के भेदभाव रहित मानव मात्र को समान अधिकार और आदर दिलाते हैं।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सच्चे राष्ट्र भक्त, प्रखर बुद्धि, स्पष्टवक्ता व भविष्य दृष्टा थे उनके द्वारा अपने भाषणों/लेखों में जो विचार व्यक्त किये जाते थे वे पूर्णतया तथ्यपरक व देश-काल से आगे भविष्य में सम्भावित घटनाओं को ध्यान में रखकर की जाती थीं। 28 फरवरी 2015 को लोकसभा में प्रस्तुत बजट भाषण में भाजपा शासित केन्द्रीय सरकार ने सम्पत्ति कर समाप्त करने की घोषणा की। निश्चय ही इस विषय पर भारत सरकार द्वारा सम्यक विचार के उपरान्त ही निर्णय लिया गया होगा। 18 सितम्बर 1953 को राज्यसभा में सम्पत्तिकर विषयक विधेयक पर बहस में भाग लेते हुए बाबासाहेब ने यह विचार व्यक्त किये थे-

सम्पत्ति कर लेने में सरकार को जितना खर्च आयेगा, उतनी आय नहीं होगी। इसलिए यूरोप की तरह अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। यूरोप के हितों के लिए जो होता है, वह भारत के हितों के लिए नहीं होता। यूरोप में लोगों की जितनी प्रगति हुई, उतनी भारत में नहीं हुई है, यदि भारत एक कम्युनिस्ट देश होता तो बात अलग होती।

उपरोक्त उद्गार बाबासाहेब द्वारा आज से 62 वर्ष पूर्व संसद में व्यक्त किये गये थे। समाजवादी विचारधाराओं से प्रभावित होने के बावजूद यह विचार व्यक्त किये गये थे जो एक राष्ट्र निर्माता, सामाजिक व आर्थिक चिन्तन का पुरोधा एवं सुविज्ञ कानूनविद ही कर सकता था। स्पष्ट है कि कानून बनाते समय डॉ. अम्बेडकर का भविष्य चिन्तन एवं उसकी परिणित सुस्पष्ट थी जिसे भारत सरकार ने लगभग 62 वर्षो बाद इस तथ्य को स्वीकार कर उनके विचारों का प्रकारान्तर से अनुमोदन ही किया है।

हिन्दू कोड बिल का उद्देश्य हिन्दुओं के परम्परागत कानून की कुछेक शाखाओं को कानूनी रूप और उसका आधुनिकीकरण करना था। इस

प्रस्तावित बिल में विभक्त कुटुम्ब पद्धति एवं स्त्री को संपत्ति तथा तलाक का अधिकार प्रदान किया गया था जो अपने आप में प्रगतिशील, विवेकशीलता, समता एवं मानवता की भावनाओं से परिपूर्ण था तथा नारी स्वतंत्रता के लिए मील का पत्थर साबित होने वाला था। परन्तु प्रतिक्रियावादी एवं कट्टरपंथी लोगों के विरोध के कारण यह बिल संसद से पास नहीं हो सका। प्रस्तावित बिल के संबंध यद्यपि डॉ. अम्बेडकर की सदस्यता एवं सकारात्मकता ही प्रमुख थी। फिर भी स्त्रियों को अत्यधिक अधिकार प्रदत्त होने के कारण बिल का विरोध डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, वीतराग सन्यासी स्वामी करपात्री जी महाराज, संकेश्वर पीठ के शंकराचार्य जेरेशास्त्री, डॉ. पटट्भि सीता रमैया, के.एम. मुंशी आदि महानुभावों ने किया। जब 17 सितम्बर 1951 में प्रस्तावित बिल चर्चा के लिए लोकसभा में पेश किया गया तो इसके विरोध में संकेश्वर पीठ के शंकराचार्य जेरे शास्त्री ने पंढरपुर की एक सभा में निम्न प्रकार से अशोभनीय तथ्यों को व्यक्त किया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल या नई भीम स्मृति की रचना की है इस को धर्मशास्त्र का आधार बता रहे हैं। किन्तु दूध या गंगोदक (गंगाजल) चाहे जितना भी पवित्र क्यों न हो, यदि वह गंदे नाले से होकर आ जाए तो उसे पवित्र नहीं माना जाता। उसी प्रकार धर्मशास्त्र में प्रमाण हो तो चूंकि डॉ. अम्बेडकर जैसे अछूत के द्वारा रचना की जाने से उसे प्रमाण नहीं मान सकते। डॉ. अम्बेडकर ने धर्म का प्रमाण दिया है। हम भी धर्म में चाहे जिसके लिए प्रमाण दे सकते हैं। धर्म में क्या नहीं है? पुनर्विवाह, नाना प्रकार के पुत्र, लड़कियों को वारिस अधिकार। ऐसा बहुत कुछ है। किन्तु ये सब बताने का अधिकार डॉ. अम्बेडकर को नहीं है। अम्बेडकर विद्वान हैं, उनका धर्मशास्त्र का गहन अध्ययन है ऐसा कहते हैं लेकिन वे अछूत हैं। अम्बेडकर रूपी नाले से आई हुई धर्मशास्त्र की गंगा पवित्र कैसे हो सकती है? नाली में बहने वाले दूध के समान वह त्याज्य है।''

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल या नई भीम स्मृति की रचना की है। वे इस धर्मशास्त्र का आधार बता रहे हैं। किन्तु दूध या गंगोदक (गंगाजल) चाहे जितना भी पवित्र क्यों न हो, यदि वह गंदे नाले से होकर आ जाए तो उसे पवित्र नहीं माना जाता। उसी प्रकार धर्मशास्त्र में प्रमाण हो तो चूंकि डॉ. अम्बेडकर जैसे अछूत के द्वारा रचना की जाने से उसे प्रमाण नहीं मान सकते। डॉ. अम्बेडकर ने धर्म का प्रमाण दिया है। हम भी धर्म में चाहे जिसके लिए प्रमाण दे सकते हैं। धर्म से क्या नहीं है? पुनर्विवाह, नाना प्रकार के पुत्र, लड़कियों को वारिस अधिकार। ऐसा बहुत कुछ है। किन्तु ये सब बताने का अधिकार डॉ. अम्बेडकर को नहीं है। अम्बेडकर विद्वान हैं, उनका धर्मशास्त्र का गहन अध्ययन है ऐसा कहते हैं लेकिन वे अछूत हैं। डॉ. अम्बेडकर रूपी नाले से आई हुई धर्मशास्त्र की गंगा पवित्र कैसे हो सकती है? नाली में बहने वाले दूध के समान वह त्याज्य है।''

देश के धनाढ्यों पूंजीपतियों, मिल मालिकों, ढोंगियों एवं कटट्रपंथियों के दबाब में उस समय के वीतराग सन्यासी स्वामी करपात्री जी महाराज ने प्रस्तावित बिल के विरोध में संविधान सभा के सदस्यों एवं पत्रकारों के समक्ष दिल्ली के इम्पीरियल होटल में अपने बयान में कहा था।

''हिन्दू कोड बिल का आश्चर्यजनक साभिप्राय प्रयत्न देखकर खेद हो रहा है। धर्मनिरपेक्ष असांप्रदायिक सरकार को किसी भी धर्म के विरूद्ध कानून बनाने का अधिकार नहीं होता। एक ओर सांप्रदायिकता को नष्ट करने का प्रयत्न तथा दूसरी ओर हिन्दू कोड बिल बनाकर सांप्रदायिकता के पथ में फंसना कहां तक उचित है? सनातन परमात्मा ने सनातन कल्याण के लिए अपने विश्वासभूत, सहज अकृत्रिम सनातन वेदों से जो सनातन मार्ग बतलाया है वही हिन्दुओं का सनातन धर्म है। उसी के आधार पर उनका धार्मिक सामाजिक जीवन चलता है। सनातनवेद व वेदानुसार आर्य धर्मग्रंथ ही हिन्दुओं का विधान है। उसमें रद्दोबदल करने का अधिकार राम-कृष्ण आदि अवतारी पुरूषों एवं मनु, वशिष्ठ, विश्वामित्र जैसे ऋषियों को भी नहीं है। फिर वर्तमान धारा सभा उसमें रद्दोबदल का साहस कैसे कर सकती हैं?

अभी तक हिन्दुओं का आधार तो वेदशास्त्र ही है। ऋषियों का मतभेद वेद के अनुसार ही है। और उसकी व्यवस्था शास्त्र, सम्प्रदाय, वर्णजाति, संपत्ति-विपत्ति, देशकाल भेद से ही हो सकती है। वह सर्वज्ञ परमेश्वर को प्रथम से ही विदित है। अतएव उसके

विश्वासभूत वेदों में सबकी व्यवस्था है। जो सर्वजन्मों, सर्वकर्मो फलों को जाने और फल देने की शक्ति रखें, वही धर्म या शास्त्र में रद्दोबदल करने का अधिकारी हो सकता है। ईश्वर के अतिरिक्त कोई व्यक्ति समूह या सम्मेलन धर्म नहीं बना सकती।''

स्वामी जी का कथन एकदम स्पष्ट है कि सनातनवेद एवं हिन्दू ग्रन्थ अपरिवर्तनीय हैं। इन्हें राम-कृष्ण जैसे अवतारी पुरूष भी नहीं बदल सकते। यह अलग बात है कि गीता के अध्याय 2, श्लोक 42, 45, में भगवान कृष्ण कहते हैं कि वेद भी त्रिगुणात्मक संसार का ही ज्ञान कराने वाले हैं। आत्मज्ञानी को वेदों की आवश्यकता नहीं रहती।''

फिर भी स्वामी करपात्री जी ने उपरोक्त विचारों के साथ हिन्दू कोड बिल का विरोध किया था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी हिन्दू कोड बिल का विरोध किया था। उन्होंने पं. जवाहर लाल नेहरू को लिखे पत्र में कहा था।

'' प्रिय जवाहर लाल जी, इस बिल से यद्यपि काफी लाभ है फिर भी मेरा ऐसा विचार है कि बिल के दूरगामी परिणामों के बारे में लोगों में मतभेद है। इसलिए मंडल के रूप में काम कर रही संविधान सभा को इस बिल को पास नहीं करना है। किसी भी परिस्थिति में इस बिल का समर्थन नहीं करना है, और पास करने की जल्दी नहीं करनी है। बिल के द्वितीय वाचन में जल्दबाजी हुई है। इस सन्दर्भ में मैंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर दी है। मेरा अनुरोध है कि इन सब बातों पर ध्यान देकर विचार कीजिए।''

स्वामी जी का कथन एकदम स्पष्ट है कि सनातनवेद एवं हिन्दू ग्रंथों अपरिवर्तनीय हैं। इन्हें राम-कृष्ण जो अवतारी पुरूष भी नहीं बदल सकते। यह अलग बात है कि गीता के अध्याय 2, श्लोक 42, 45, के भगवान कृष्ण कहते हैं कि ''वेद भी गुणात्मक संसार का ही ज्ञान कराने वाले हैं। आत्मज्ञानी को वेदों की आवश्यकता नहीं रहती।''

यहां यह कहना अनुचित न होगा कि सनातन धर्मियों, कट्टरपंथियों, रूढ़िवादियों एवं परम्परावादी हिन्दुओं को सबसे बड़ा भय यह था कि इस बिल के बाद उनके कारोबार एवं सम्पत्तियों में लड़कियां भी हिस्सेदार बनेंगी और उनके जामाता (दामाद) उनकी पुत्रियों को भड़का कर संपत्ति का बंटवारा करेंगे तथा उनके कारोबार में हिस्सेदारी सुनिश्चित करेगें। परन्तु देश में उदारवादी, प्रगतिशील, सामाजिक-आर्थिक सुधारवादियों, समता एवं मानवता में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों की भी कमी न थी। आचार्य कृपलानी, दैनिक वीर अर्जुन के सम्पादक धर्मदेव विद्यावाचस्पति, मद्रास के पूर्व एडवोकेट जनरल अल्लादि कृष्ण स्वामी अय्यर, ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता एवं लेखक वि.सं. खांडकर आदि प्रमुख विद्वान, चिन्तनशील एवं न्यायविद महानुभावों ने बिल का पुरजोर समर्थन किया था। फिर भी यह बिल लोकसभा में पारित नहीं हो सका। अंततः 26 सितम्बर 1951 को प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की घोषणा के बाद यह बिल सदन से वापस ले लिया गया। जिसमें डॉ. अम्बेडकर ने एक ऐसे भारत का स्वप्न देखा था जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व-भाव की सौगात लाने वाला था उनका एक संघ समाज व्यवस्था का स्वप्न था जो इस बिल के माध्यम से साकार होने वाला था। स्वभावतः वह अत्यन्त दुखी थे। लेकिन कहते हैं कि विकास एवं परिवर्तन के बीज उसकी पूर्व परम्परागत परिस्थितियों एवं प्रास्थितियों में सन्निहित होती है। बाबासाहेब द्वारा नारी स्वतंत्रता, चेतना एवं जागरूकता का जो मंत्र फूंक दिया गया था। वह भविष्य में प्रस्फुटित होकर पुष्पित एवं पल्लवित हो अपने साकार रूप को प्राप्त हुआ। जब 1955-56 में इसी हिन्दू कोड बिल को कई टुकड़ों में जैसे-हिन्दू विवाह कानून, हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू गोद एवं गुजारा-भत्ता कानून अलग-अलग पारित हुआ। हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) विधेयक 2005 के द्वारा महिलाओं को सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया गया। भारतीय संसद ने, देश के लोगों ने बाद में इन विधेयकों को पारित कर एक तरह से बाबासाहेब के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। यह डॉ. अम्बेडकर की भारत माता एवं देश के प्रगतिशील उत्थान में मौलिक योगदान का प्रभाव है। जिससे आज लगभग 57 करोड़ महिलाएं आजादी के साथ पुरूषों से कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही हैं।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर एक प्रमुख प्रवक्ता, राष्ट्रनिर्माता, देशभक्त, स्वतंत्रता, समता एवं मानवता के पुजारी थे। वे कुशल राजनीतिज्ञ एवं भविष्य दृष्टा थे। उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। इसलिए व छलकपट एवं तथ्यों की लीपापोती में विश्वास न करते हुए स्पष्ट शब्दों में अपने विचारों को रखते थे, चाहे गोलमेज सम्मेलन हो या कौंसिल ऑफ स्टेट्स, संविधान निर्मात्री सभा हो या संसद हो, हर जगह बेबाक और दो टूक शब्दों में साक्ष्यों/प्रमाणों सहित अपनी बात रखने के लिए जाने जाते थे। उनकी दूरदर्शिता एवं राष्ट्रभक्ति निर्विवादित थी। ■

(लेखक सम्पादक मण्डल के अध्यक्ष हैं)

राष्ट्र निर्माता डॉ. अम्बेडकर : लोकतंत्र और दलित विमर्श

■ प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

दादू हाड़ौ मुख भरों, चाम रह्यौ लिपटाई।
मांही जिह्वा मांस की ताही सैती खाई॥
(अर्थात् समान अस्थि-मज्जा से बने कुछ लोगों को अछूत कहा जाता है, लेकिन उन्हीं से बने मुंह की जीभ और दांत अछूत क्यों नहीं?)

संत कवि दादू का यह प्रश्न वर्ण-जाति के नाम पर शताब्दियों से खांचों-खानों में बंटे भारतीय समाज पर तीखी टिप्पणी दर्ज करता है। भारत के इतिहास का वह सर्वाधिक काला दिन था, जब जन्म के साथ गुण-कर्म के स्थान पर वर्ण-जाति की व्यवस्था को जोड़ दिया गया था। सामाजिक अलगाव की इस कुरीति ने अब तक न जाने कितने काले पृष्ठ भारतीय इतिहास में जोड़े हैं। वैसे तो इससे जुड़ी पीड़ा और चिंता को बुद्ध से लेकर मध्यकालीन संतों और भक्तों और आधुनिक युग में डॉ. भीमराव अम्बेडकर (1899-1956) तक ने बार-बार उकेरा और सामाजिक परिवर्तन की अलख भी जगाई, किन्तु किसी न किसी रूप में काले पृष्ठ लगातार जोड़े जा रहे हैं। खास तौर पर हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में चिन्ताएं गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक उत्तरदायित्व से रूबरू कराती हैं।

पिछली एक-डेढ़ शताब्दी में इस तरह के प्रश्नों को व्यापक मानवीय सरोकारों के साथ जोड़ते हुए नए आयाम मिले हैं। इसी प्रवाह में समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में दलित-विमर्श ने जन्म लिया है, जो सब प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध सजग और सचेत करता है। इस सचेतनकारी विमर्श को आधार देने में प्रखर चिन्तक एवं समाजकर्मी डॉ. भीमराव अम्बेडकर की अवस्मिरणीय भूमिका रही है। सामाजिक और आर्थिक समानता की ओर उन्मुख दलित-विमर्श ने न सिर्फ अखंड राष्ट्रीयता का पक्ष लिया है, वरन् उससे आगे जाकर अखण्ड मानवता को चरितार्थ करने की पहलकदमी भी की है। अपने व्यापक स्वरूप में यह विमर्श जाति, नस्ल, रंग, धर्म आदि सभी धरातलों पर मानवनिर्मित असमता के निषेध का विमर्श है। इन सारे विभेदकारी तत्त्वों में से भी उसकी पहली नजर जाति और वर्ण पर है। यह मानता है कि प्रजातंत्र की सफलता के लिए सामाजिक समता पहली आवश्यकता है, तभी आर्थिक या अन्य प्रकार की समताओं की बात हो सकती है। यह उन सभी संस्थाओं, मतों और शास्त्रों के विरुद्ध है जो वर्ण-व्यवस्था और जातिभेद को बरकरार रखे हुए हैं।

दलित विमर्श के शुरूआती चरण बुद्ध की वाणी में दिखाई देते हैं, जो क्रमशः पालि, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी जनभाषाओं से आगे बढ़ते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं के आरंभिक और मध्यकालीन काव्य में विस्तार लेते चले गए। विशेषतः मध्युगीन संत काव्य में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हुई है, जिसने भारतीय समाज को गहरे तौर पर आंदोलित भी किया। आधुनिक पुनर्जागरण के दौर में दलित चिंता का स्वर पुनः उभरा, जो राष्ट्रीय आंदोलन को एक नया आयाम दे रहा था। इसी की सफल परिणति के रूप में ज्योतिराव फुले (1827-1890), महात्मा गांधी (1861-1948) और डॉ. अम्बेडकर (1891-1956) जैसे व्यक्तित्व सामने आए, जो न केवल दलित विमर्श को नई जमीन देते हैं वरन् उसे आन्दोलनधार्मिता के साथ जोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन के एक बड़े सवाल के रूप में उभारने में भी कायायाब रहे। समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में दलित विमर्श और दलित साहित्य की वैचारिक पीठिका को निर्मित करने में डॉ. अम्बेडकर और उनके प्रजातंत्र संबंधी विचारों की भूमिका निर्णायक और निर्विवाद रही है।

डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक विचार, खासतौर पर उनकी प्रजातंत्र विषयक अवधारणा भारत की विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति से सम्पृक्त है। वे मात्र तत्व चिन्तक या सैद्धांतिक राजनीतिक विचारक ही नहीं थे, वरन् एक कर्मयोद्धा भी थे। वे भारतीय दलित-शोषित वर्ग के अधिकारों को लेकर जागरूक एक ऐसे नायक थे, जिन्होंने प्रजातंत्र के पश्चिम से आयातित चेहरे को भी बदलने के लिए बाध्य किया। उन्होंने खुद प्रजातंत्र की एक नई परिभाषा गढ़ी है। वे जहां प्रजातंत्र को 'विचार-विमर्श का शासन' कहते हैं और अब्राहम की दृष्टि में 'प्रजातंत्र शासन का ऐसा रूप तथा पद्धति है, जिसमें बिना रक्त बहाए क्रांतिकारी, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है।' वे प्रजातंत्र की सच्ची कसौटी इसी बात में मानते हैं कि वह केवल शासन प्रणाली नहीं है, वरन् मिल-जुलकर रहने का तरीका है, जिसमें लोग आपस में अपने सारे दु:ख-सुख बांट लेते हैं। जाहिर है अम्बेडकर का यह आदर्श आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

डॉ. अम्बेडकर का विचार है कि संसदीय शासन प्रणाली के तीन गुण हैं– प्रथम, इसमें वंशानुगत शासन नहीं होता

वरन् शासन की शक्तियां जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्राप्त होती हैं। द्वितीय, इसमें कोई व्यक्ति सत्ता का प्रतीक नहीं होता। तृतीय, निर्वाचित प्रतिनिधियों में जनता का विश्वास होना चाहिए और निश्चित अन्तराल के बाद इस विश्वास का नवीकरण जरूरी होता है। वे मानते थे कि संसदीय प्रजातंत्र की सफलता के लिए जरूरी है कि सामाजिक-आर्थिक जीवन में घोर विषमताएं न हों अर्थात् समाज में ऐसा न हो कि सारा बोझ कुछ वर्गों पर डाल दिया जाए और सारे विशेषाधिकार किसी अन्य वर्ग के हिस्से में आ जाएं। ऐसा भेदभाव सामाजिक दरार को जन्म देता है जिसमें खूनी क्रांति के बीज अंकुरित होने लगते हैं। डॉ. अम्बेडकर बार-बार इस तरह खतरों से आगाह करते हैं कि कहीं प्रजातंत्र के नाम पर अल्पमत पर बहुमत का अत्याचार न जारी रहे। उनकी दृष्टि में अल्पमत में सुरक्षा की भावना लोकतंत्र का आधार-स्तम्भ है। फिर यह भी संभावना बनी रहती है कि अल्पसंख्यक समुदाय लगातार राजनीतिक अल्पमत की स्थिति में रहे। इससे भिन्न श्रेणी की जातियों को शक्ति के प्रयोग में अपना उपयुक्त हिस्सा कभी नहीं मिल पाएगा। जाहिर है भारत का वर्तमान परिदृश्य इस प्रकार के खतरों से मुक्त नहीं है। आज भी प्रजातंत्र से जुड़े इस सामाजिक-सांस्कृतिक उत्तदायित्व की व्यापक प्रतिष्ठा की जरूरत बनी हुई है। खुद डॉ. अम्बेडकर राजनीतिक लोकतंत्र की सीमाओं से परिचित थे। इसलिए वे राजनीतिक लोकतंत्र से आगे बढ़कर सामाजिक लोकतंत्र की बात करते हैं। यह ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्वतंत्रता समानता और बन्धुत्व को समान महत्व दिया जाता है। डॉ. अम्बेडकर इस बात से बेहद खिन्न थे कि इस देश में समानता का नितांत अभाव है। वे मानते हैं कि समानता की सिद्धि महज राजनीतिक समानता और कानून के समक्ष समानता स्थापित नहीं की जाती, तब तक उनकी समानता अधूरी रहेगी। उन्होंने भारतीय संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए कहा भी था, ''इस संविधान को अपनाकर हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। इससे राजनीतिक जीवन में तो हमें समानता प्राप्त हो जाएगी, लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में विषमता बनी रहेगी। राजनीति के क्षेत्र में तो हम एक व्यक्ति, एक वोट, एक मूल्य के सिद्धांत की मान्यता प्रदान कर देंगे, परन्तु हमारा सामाजिक और आर्थिक ढांचा इस ढंग से नहीं बदल जाएगा, जिससे 'एक व्यक्ति, एक मूल्य' के सिद्धांत को सार्थक किया जा सके।'' जाहिर है कि समानता का स्वप्न तभी साकार होगा जब मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, अर्थात् राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति की समान नैतिक मूल्यवत्ता को चरितार्थ किया जा सके। ऐसे में डॉ. अम्बेडकर को राज्य का सर्वशक्तिमान और निरंकुश रूप कैसे मान्य हो सकता था ? इसलिए वे राज्य को समाज सेवा का एक साधन मानते हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता के बावजूद यदि उसमें एक राष्ट्र के तत्वों की उपस्थिति स्वीकार की है तो इसके पीछे उनका सांस्कृतिक चिंतन महत्वपूर्ण रहा है। 'भारत में जाति प्रथा की संरचना, उत्पत्ति और विकास' शीर्षक आलेख में डॉ. अम्बेडकर ने जाति और वर्ण की समस्या को विकराल रूप में दिखाया है, जहां वर्णों की परिवर्तनशीलता के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया। वे दिखाते हैं कि कई जातियों की संरचना तो उच्च वर्ग की नकल से ही हुई है। फिर भी वे स्वीकार करते हैं कि हिन्दू जनसंख्या में विविध तत्वों के सम्मिश्रण के बावजूद दृढ़ सांस्कृतिक एकता है। जातियां इस विराट् सांस्कृतिक इकाई का अंग हैं। शुरू में केवल एक ही जाति थी और इन्हीं वर्गों में देखा-देखी या बहिष्कार से विभिन्न जातियां बन गईं। इसीलिए वे चाहते थे कि राजनीतिक सुधारों के पहले सामाजिक सुधार हों। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि सांस्कृतिक स्तर पर यदि कुछ लोग पीछे रह गए हैं तो उसमें कथित उच्च जाति के लोगों की भी भूमिका रही है। फिर जाति प्रथा ने जनचेतना को भी नष्ट कर दिया है। इसलिए वे एक गतिशील समाज की संकल्पना करते हैं। अनके अनुसार - ''मेरा आदर्श एक ऐसा समाज होगा जो स्वाधीनता, समानता और भाईचारे पर आधारित हो......... आदर्श समाज गतिशील होना चाहिए।'' और यह भी कि ''जातिप्रथा उन्मूलन का कार्य स्वराज

> **डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता के बावजूद यदि उसमें एक राष्ट्र के तत्वों की उपस्थिति स्वीकार की है तो इसके पीछे उनका सांस्कृतिक चिंतन महत्वपूर्ण रहा है। 'भारत में जाति प्रथा की संरचना, उत्पत्ति और विकास' शीर्षक आलेख में डॉ. अम्बेडकर ने जाति और वर्ण की समस्या को विकराल के रूप में दिखाया है, जहां वर्णों की परिवर्तनशीलता के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया। वे दिखाते हैं कि कई जातियों की संरचना तो उच्च वर्ग की नकल से ही हुई है।**

से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। स्वराज से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न स्वराज के अंतर्गत हिन्दुओं को बचाना है। हिन्दू समाज जब जातिविहीन समाज बन जाएगा, तभी इसके पास स्वयं को बचाने के लिए काफी होगा।'' डॉ. अम्बेडकर इस देश की राजनीतिक समानता और आजादी से ज्यादा महत्व सामाजिक-सांस्कृतिक समानता और आजादी को दे रहे थे। इसके पीछे उनकी आकांक्षा आमूलचूल बदलाव को लाने की थी, महज सत्ता हस्तांतरण तक सीमित नहीं थी। आज भी यदि इस देश की सामाजिक-सांस्कृतिक समानता की राह में बाधाएं मौजूद हैं तो उसके दुष्परिणामों को भोगने के लिए हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था भी अभिशप्त है।

डॉ. अम्बेडकर के प्रजातंत्र और समानता संबंधी विचारों के आलेक में दलित विमर्श का आगमन एक स्वाभाविक घटना के रूपमें देखा जाना चाहिए। यह जरूर है कि हिन्दी जगत् में एक ढंग के दलित विमर्श का आगमन कुछ विलम्ब से और बरास्ते मराठी साहित्य हुआ, फिर इसने बहुत कम समय में अपनी अलग पहचान बना ली है। खासतौर पर पिछले दो-तीन दशकों में इसने न सिर्फ सुन्दर अतीत से आते मान-मूल्यों पर प्रश्न-चिन्ह लगाए हैं, वरन् कथित आधुनिकता और प्रगतिशीलता के आडम्बर में छुपी दलित विरोधी मानसिकता पर भी अपना निशाना साधा है। दलित साहित्य को प्राय: 'नकार' का साहित्य कहा जाता है, इसके बजाय इसे प्रवाह का साहित्य कहना अधिक संगत है, क्योंकि फिलवक्त यह अपनी स्पष्ट और खरी पहचान बनाने में सक्रिय हैं।

दलित-विमर्श के प्रस्थान बिन्दु पर गांधी बनाम अम्बेडकर की चर्चा किए बिना आगे बढ़ना प्राय: मुश्किल रहा है। दलित विमर्श से जुड़े विद्वानों ने इन दोनों के विचार और कर्म से स्पष्ट सीमा रेखा खींची है, जिसमें स्वानुभव के अंतर की खास भूमिका रहा है। इस संबंध में दलित विमर्शक मानते रहे हैं कि अछूतों के संबंध में गांधी जी का चिंतन सुधारवादी था, परिवर्तनवादी नहीं। गांधी जी का कार्य उस व्यक्ति का कार्य था जो कुंए में गिरे हुए व्यक्ति को मुंडेर पर खड़ा रहकर बचाने का प्रयास कर रहा था, डॉ. अम्बेडकर अस्पृश्यता के आचार-विचार को स्वयं अनुभव कर चुके थे। दलितों में दशांतर गांधी जी का लक्ष्य था तो दलितों का स्थित्यांतर डॉ. अम्बेडकर को अभिप्रेत था। गांधी जी हिन्दू धर्माधिष्ठित सामाजिक व्यवस्था के ढांचे में रहकर दलितों में सुधार चाहते थे, डॉ. अम्बेडकर उस ढांचे को तोड़कर या नकार कर उनकी मुक्ति चाहते थे। अम्बेडकर की स्पष्ट मान्यता है कि भारत की जाति प्रथा (Caste System) लोकतंत्र के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है और उसे नष्ट किए बिना प्रजातंत्र को समूचेपन के साथ साकार किया जाना मुश्किल है।

यह स्थापित तथ्य है कि दलित चेतना के अभ्युदय में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है, किन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि उनकी विचारधारा बुद्ध, कबीर, रैदास और ज्योतिराव फुले जैसे समतानिष्ठ चिंतकों से अनुप्रेरित थी। अम्बेडकर की यह दृष्टि उल्लेखनीय है कि हमें न सिर्फ पहले पहल भारतीय होना चाहिए वरन् अंतत: भी भारतीय ही बने रहना चाहिए, और कुछ नहीं। राष्ट्र की इसी कल्पना को वे आजीवन कर्म और विचार सभी धरातलों पर साकार करते रहे। डॉ. अम्बेडकर भारतीय स्वाधीनता के प्रबल समर्थक थे, किन्तु वे यह भी मानते थे कि हमारे राजनीतिक पक्ष को सुदृढ़ करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन भी जरूरी है। उन्होंने कहा था, ''राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से महत्वपूर्ण अछूत की सामाजिक स्वाधीनता है।'' अम्बेडकर जब हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण करते हैं तो उनकी निगाह इसकी बहुस्तरीय जटिल संरचना पर टिकी हुई थी। वे मानते हैं कि यह व्यवस्था असमानता पर आधारित है। जाति, वर्ग, कुल तथा वंश के आधार पर बनी इस पिरामिड रूपी व्यवस्था के शीर्ष पर एक वर्ग अपना आधिपत्य तथा वर्चस्व स्थापित किए हुए है, जिसके कारण अन्य वर्ग अपने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित हैं और यही उनके शोषण का कारण है। डॉ. अम्बेडकर ने इस व्यवस्था को राष्ट्रीय एकता में भी बाधक माना। दलितों के उत्थान को उन्होंने राष्ट्र का उत्थान माना है। वस्तुत: दलित चिंतन में राष्ट्र एक भारतीय परिवार या कौम के रूप में है, जो उसकी व्यापकता का ही द्योतक है। इसका यदि परम्परारूढ़ चिंतन से अंतर दिखाई देता है तो वह यह कि दलित चिंतन महज जाति के आधार पर कुछ लोगों को विशेषाधिकार देने और कुछ लोगों को मानवाधिकारों से वंचित करने का विरोध करता है, जबकि जाति-वर्ण की रूढ़ मान्यताएं इन्हें बरकरार रखना चाहती हैं।

भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में डॉ. अम्बेडकर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन उनका दलित विमर्श रहा है, जो महज विचार के स्तर पर ही नहीं पनपा, उसकी साहित्य एवं कलाओं में बहुआयामी अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुत: भारतीय नवजागरण की चिंताओं में दलितों-शोषितों की दुरवस्था और उपेक्षा को समाप्त करने की चिंता शामिल रही है। दयानन्द सरस्वती, विवेकानंद से लेकर महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर तक सभी ने भारतीय समाज व्यवस्था के जाति आधारित वर्ग वैषम्य पाटने की कोशिश की। इसका शुरूआती असर भारतेंदु युग से लेकर द्विवेदी युग तक के रचनाकारों पर दिखाई दिया, वहीं बाद में प्रेमचंद, निराला जैसे बड़े रचनाकारों ने दलित पीड़ा को व्यापक मानवीय सरोकारों के बरअक्स देखा। प्रगतिवादी काव्यधारा

में भी दलित चिंता उत्तरोत्तर गहराती चली गई, जहां दलित को सर्वहारा की स्थिति में देखा गया। दलितों की पीड़ा की प्रामाणिक अभिव्यक्ति वैसे तो मध्यकाल से ही प्रारंभ हो गई थी, किन्तु आधुनिक काल में और उसमें भी सत्तर के दशक में उभरे दलित साहित्य को एक नई शुरुआत के रूप में देखा जाना चाहिए। समकालीन दलित साहित्य एक नए सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका तैयार करता है, जिसने लम्बे समय से प्रतिष्ठित सौन्दर्यशास्त्र को चुनौती दी है। पूर्व से चले आ रहे सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों के केन्द्र में काल्पनिक रोमानियत है, वहीं दलित साहित्य में घटनाओं के खुरदरेपन की यथार्थ अभिव्यक्ति केन्द्रस्थ है। वस्तु के अन्तर्निर्हित सौंदर्य के अन्वेषण में गतिशील रहे परम्परागत सौंदर्यशास्त्र से हटकर दलित साहित्य जीवन की विषमताओं, शोषण और धार्मिक विद्रूपताओं के विरुद्ध नये सौंदर्यशास्त्र की आधारशिला रखता है, जिसके गहरे सामाजिक सरोकार हैं। नारी रूप की परम्परागत सुकुमार और दीप्त छवि के स्थान पर उसके श्रम-स्वेद से सिंचित सौंदर्य को केन्द्र में लाने की कोशिश दलित साहित्य करता है। वस्तुतः खुरदरे यथार्थ को समाहित करते हुए दलित साहित्य भाव को संवेदना के स्तर पर ही नहीं बदला है, वह अभिव्यक्ति के उपकरणों में भी इस खुरदरेपन को रूपायित करता है। दलित साहित्य की संवेदना और शिल्प निरन्तर विकासमान है। वह बनावट भाषा, आरोपित अलंकरणों से परहेज करता है। उसकी अभिव्यक्ति में यदि नुकीलापन आया है तो वह अनायास नहीं है। इसके पीछे एक लम्बी वैचारिक पृष्ठभूमि रही है। इसीलिए अब कविता हमारा मन बहलाने के बजाए तेज नुकीला खंजर बनती है। बकौल जयंत परमार-

किसी गली में नुक्कड़ पर
या फिर किसी मुहल्ले में
जब भी कविता पाठ होता है
मेरे लफ्ज की गंध व
पुलिस पहुंच जाती है
गोया वहां पर
टेररिस्ट आने वाले हों।
सारी गली और सारा मुहल्ला
पुलिस से भर जाता है
मेरी कविता
पुलिस में दर्ज होती है
उन्हें खौफ है
मेरी कविता तेज नुकीला खंजर है
एक न एक दिन
रात के सीने में उतरेगा।
उस दिन अपनी बयाज का एक वरक
हवाले हाथ में रख दूंगा।

कविता को खंजर बनाने की यह कोशिश डॉ. अम्बेडकर के चिंतन के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों को प्रत्यक्ष करती है। सामाजिक परिवर्तन की गति तभी तेज हो सकती है, जब विविध कला माध्यम दलित पीड़ा को महज मुखरित ही न करें, उसका सार्थक प्रतिपक्ष भी तैयार करें।

यह तय बात है कि डॉ. अम्बेडकर ने राजनीति, धर्म, समाज और अर्थतंत्र के पारम्परिक क्षेत्रों को तो आंदोलित किया ही है, उनकी प्रतिध्वनि संस्कृति और साहित्य तक सुनाई दे रही है। दलित-गैर दलित जैसे साहित्यिक विभाजन निश्चय ही कई प्रश्न खड़े करते हैं, किन्तु यह तय है कि दलित साहित्य की एक पहचान बन गयी है। इसका लक्ष्य मानव-मानव के बीच सभी प्रकार के गैर-बराबरी के रिश्तों पर प्रश्नचिन्ह लगाना है, जो डॉ. अम्बेडकर को भी काम्य था। वस्तुतः किसी भी देश, कला या समाज का श्रेष्ठ साहित्य समरस मानवता के पक्ष में खड़ा होता है। इस दृष्टि से दलित साहित्य का महत्व तीखेपन और मुस्तैदी के साथ मानवता के पक्ष में खड़ा होता है। इस दृष्टि से दलित साहित्य का महत्व तीखेपन और मुस्तैदी के साथ मानवता के पक्ष में खड़े होने में है। डॉ. अम्बेडकर ने प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जाति के सवाल को बेहद गंभीरता से लिया था। उनकी मान्यता है कि आप जो भी क्रान्ति करेंगे, जाति का राक्षस आपका रास्ता जरूर रोकेगा। अतः जाति के राक्षस को मारे बिना आप कोई सुधार नहीं कर सकते हैं। दलित आंदोलन और दलित साहित्य आज यदि जाति का उन्मूलन नहीं कर पाये हैं तो हमारी चिंता स्वाभाविक है। वस्तुतः डॉ. अम्बेडकर के प्रजातंत्र संबंधी विचारों को साकार करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक उत्तरदायित्व बेहद जरूरी है। प्रजातंत्र का शुभ संकल्प तभी मैदानी हकीकत में बदल सकता है, अब समूचा समाज सशक्त और सकर्मक बने। आखिर किसी भी प्रकार की पूर्वाग्रही असमानता से आदर्श राष्ट्र और नैतिकता का निर्माण कैसे हो सकता है? जाहिर है दलित विमर्श को डॉ. अम्बेडकर के प्रजातंत्र के स्वप्नों को साकर करते हुए अपनी परिधि सकर्मक बने। आखिर किसी भी प्रकार की पूर्वाग्रही असमानता से आदर्श राष्ट्र और नैतिकता का निर्माण कैसे हो सकता है? जाहिर है दलित विमर्श को डॉ. अम्बेडकर के प्रजातंत्र के स्वप्नों को साकार करते हुए अपनी परिधि को विस्तृत कर अखंड मानवता के पक्ष में उठ खड़ा होना होगा। ■

सन्दर्भ

1. दादूदयाल, दादूवाणी।
2. डॉ. बी.एल. फड़िया : राजनीतिक चिन्तनः भारतीय एवं पाश्चात्य, साहित्य भवन, आगरा, 2007 ई.
3. ओमप्रकाश गाबा : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा, मयूर पेरवेक्स, नोएडा, 2007 ई.
4. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : संपूर्ण वाङ्मय, खंड 1, 1003, पृ. 33
5. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : दलित साहित्य : रचना और विचार।
6. पासवान प्रज्ञाचक्षु डॉ. सुकन पासवान : भारतरत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर : सृष्टि और दृष्टि, भावना प्रकाशन, पृ. 48
7. दलित साहित्य, वार्षिकी, 2002

(लेखक सम्पादक मंडल के सदस्य हैं)

डॉ. अम्बेडकर का आहत बचपन एवं समाजोद्धार

■ डॉ. प्रभु चौधरी

डॉ. अम्बेडकर अपने वर्ग में अथवा मोहल्ले में केवल भीमराव ही ऐसे अकेले बालक नहीं थे जो अछूत माने जाते थे। सारे वर्ग के सभी बच्चे ही अछूत थे, अछूत वर्ग में जो जन्में थे। जो जिस जाति में पैदा होगा उसके साथ वैसा ही तो व्यवहार किया जायेगा। ओछी जाति ओछा व्यवहार ऊंची जाति ऊंचा व्यवहार। यही तो ईश्वरीय सिद्धांत है। ऋषियों ने ही ऐसी व्यवस्था समाज में स्थापित की है।

बालक भीम को न तो वह ईश्वरीय सिद्धांत ही स्वीकार हो रहा था और न ही हिन्दू धर्म के ऋषियों की सामाजिक व्यवस्था। यह उद्वेलन समाज के अन्य बालकों में नहीं था। केवल भीम के ही मन मस्तिष्क में था। वह तो समझ ही नहीं पा रहा था कि ऐसा ओछा व्यवहार क्यों? एक ही धर्म में एक बालक श्रेष्ठ और दूसरा नीचा। उसकी जाति को न तो साफ सुथरा रहने का अधिकार था, न अच्छे कपड़े पहनने का। सवारी पर तो कोई बैठ ही नहीं सकता था। पैदल चलना ही आवश्यक था। श्रेष्ठी वर्ग के समान जूते तक पहनना उनके लिए वर्जित था। अगर जूते पहन रखे हों तो उन्हें तत्काल उतारकर हाथ में ले लेना होता था। ईंट-चूने का मकान तो बनाना बहुत बड़ा सामाजिक अपराध था बल्कि श्रेष्ठी वर्ग के प्रति अपमान जनक व्यवहार था।

ऐसे ही कई आघात बालक भीम का मन बार-बार उद्वेलित कर देता था। उन्होंने अपनी बहुत छोटी सी वय में ही यह समझ लिया था कि इस समूची विसंगति का मूल कारण अशिक्षा है। उनके पूर्ववर्ती समाज सुधारक, जो उनके प्रेरक पुरुष भी थे, महात्मा ज्योतिबा फुले ने अपने अनुभव का यही सार निकाल कर दिशा-निर्देश दिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा - ''ज्योतिबा ने अनुभव किया, बिना शिक्षा का प्रचार किए, बहुजन समाज में चेतना नहीं आएगी वे अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हो पायेंगे। बहुजन समाज अर्थात् वे लोग जिन्हें तब अछूत और निम्न जाति का माना जाता था। ज्योतिबा अपनी वाणी में आगे कहते हैं -

विद्या बिना मती गेली
मती बिना नीति गेली
नीति बिना वित्त गेले
वित्त बिना शूद्र खचले।

वे एक अन्य स्थान पर कहते हैं-

''**विद्या शिकतांच पावाल तें सुख ध्यावा माझा लेख जोति म्हाणणे।**

अर्थात् - विद्या सीखने पर ही सुख मिलेगा। मेरे इस लेख पर ध्यान रखो। यह ज्योतिबा का कहना है।''

भीमराव के घर में नित्य प्रति सत्संग होता था। कबीर के वचन-वाणी, भीमराव को बचपन से ही कबीर बनाते रहे। अब्राहम लिंकन को उन्होंने खूब पढ़ा था। ज्योति-बा फुले को तो उन्होंने अपने जीवन संघर्ष का आधार ही बना लिया था बल्कि उनके तो वे उत्तराधिकारी और अनुयायी ही थे।

सतारा से अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करते ही भीमराव ने हाईस्कूल में प्रवेश ले लिया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्तियां शिक्षा प्राप्त करने में जुटा दीं। यहीं से हुई भीमराव की संघर्ष यात्रा। अब तक के अनुभूत अपमान को भोगने का वास्तविक अनुभव उन्हें हाईस्कूल जीवन में होने लगा। उन्होंने उसका डटकर मुकाबला भी किया। उनका एक ही लक्ष्य था विद्या प्राप्त कर स्वयं को सक्षम बनाना।

एक बार बालक भीम अपने बड़े भाई और नन्हें भतीजे के साथ गोरे गांव जा रहे थे जहां उनके पिता रहते थे। वे पड़ोली स्टेशन से मंसारे उतरे। वहां से आगे जाने का कोई साधन नहीं था। दिन अस्त हो गया था। वहां से स्टेशन मास्टर ने दया करके एक बैलगाड़ी की व्यवस्था कर दी। तीनों गाड़ी पर बैठकर चल दिये। थोड़ी दूर चलने पर पता नहीं किस तरह गाड़ीवान को पता चल गया तीनों सवारियां अछूत हैं। गाड़ीवान सवर्ण हिन्दू था। वह घबरा गया। सवर्ण हिन्दू समाज और धर्म दोनों का उसे भय लगा और उसने रास्ते में ही तीनों को गाड़ी से नीचे उतार दिया। अच्छे कपड़े पहनकर सवर्णों जैसा स्वांग करने पर उसने तीनों को बहुत फटकारा और ताकीद की कि आगे से भी इस प्रकार धोखाधड़ी करने का साहस न करें। वर्ना परिणाम बुरा होगा। बार-बार प्रार्थना करने और अधिक किराया देने का प्रस्ताव भी उसने ठुकरा दिया। पास के पोखर से उसने गाड़ी को धोकर शुद्ध किया। फिर स्वयं भी स्नान किया और वापिस लौट गया। तीनों जैसे-तैसे भूखे-प्यासे थके-मांदे आधी रात तक गोरे गांव पहुंच पाये। मार्ग में किसी ने उन्हें पानी तक नहीं पिलाया। सब पहले जात पूछते थे, फिर दुत्कार कर भगा देते थे।

बालक भीम के मन में अभी इस आघात की पीड़ा कम भी नहीं हुई थी कि एक कुएं पर पानी पी लेने के अपराध में सवर्णों ने उन्हें बेरहमी से इतना पीटा

कि वे रो-रो कर बेहाल हो गये। अब उन्हें समाज की विशेष कर सवर्ण हिन्दू समाज को निर्दयता का खरा-खरा अनुभव होने लगा। उन्हें ठीक से समझ में आने लगा था कि सवर्ण हिन्दू समाज उसको केवल इसलिए अछूत व घृणित समझता है क्योंकि, वह जाति से अछूत हैं। ऐसी जाति में वह जन्मा है कि जो स्वयं को अछूत मानती, स्वीकारती और समझती भी हैं। इसी में वह अपना पैदा होना और मरना मान चुकी है। उनकी सक्षम बनने की ललक और भी दृढ़ हो उठी। वे इस व्यवहार से दु:खी तो हुए, निराश नहीं।

शाला जाते समय वर्षा से भीग जाने के डर से एक सवर्ण हिन्दू के चांदे (दीवाल) की ओट में खड़ा रह जाने के अपराध में जब उस परिवार की महिला ने ''अछूत'' भीम को बरसती हुई मूसलाधार वर्षा में गली के कीचड़ में धकेल दिया तब भी वह क्रान्ति दूत बालक निराश नहीं हुआ। उसके मन में एक गांठ सवर्णो के विरुद्ध और पड़ गई, अपनी कीचड़ सनी पुस्तकें कापियां उठाकर उसी हालत में कीचड़ और पानी से लथपथ चुपचाप वहां से चल दिया। केवल एक बार उस पिशाचनी महिला की ओर उसने एक नजर भर देखा अवश्य। तब भी उस दृढ़ संकल्पी बालक की नज़र में भय का तरना नहीं थी। यदि कुछ था तो संघर्षरत रहने का दृढ़ भाव। सामाजिक क्रांति का दृढ़ संकल्प।

एक बार जब विद्यार्थी भीमराव छाते के अभाव में पूरी तरह भीगा हुआ अपनी पाठशाला पहुंचा तब कक्षा में पढ़ाई प्रारंभ हो चुकी थी। कक्षा अध्यापक श्री पेंडसे यद्यपि ब्राह्मण थे तथापि उन्होंने भीम को अपने घर लेजाकर पहनने के लिए एक वस्त्र दिया। वह वस्त्र इतना छोटा था कि भीम बहुत कठिनाई से अपना शरीर ढक पा रहा था। जब भीम वस्त्र बदलकर कक्षा में पहुंचा तब उसकी इस विचित्र व अर्द्धनग्न स्थिति को देखकर सब विद्यार्थी उपहास करने लगे किशोर भीम विवश था। उसके पास कोई विकल्प न था। पेंडसे जी चाहते तो कोई बड़ा वस्त्र भी उसे पहनने के लिए दे सकते थे किन्तु ब्राह्मण होने के कारण दूसरे कि सवर्ण होने के कारण।

एक और ब्राह्मण शिक्षक का उपकार तो भीमराव सकपाल ने सदा माना उनका उपनाम अम्बेडकर था। वे मानवतावादी व उदार चेता शिक्षक थे। भीमराव सकपाल से वे बहुत प्रभावित थे। सदा उसकी मदद करते रहते थे।

''सकपाल'' भीमराव का वंश नाम था। एम्बावेद उनके पूर्वजों के गांव का नाम। महाराष्ट्र में प्राय: जन्म गांव या पुरखाओं के गांव का नाम उपनाम की तरह मुख्य नाम के साथ जोड़ने का चलन रहा है। आज भी है। इसीलिए भीम का उपनाम 'अम्बावदेकर'' रखा था। उस ब्राह्मण शिक्षक ने शब्द साम्य जानकर अपना उपनाम ''अम्बेडकर' भीम के साथ जोड़ दिया। भीम उनका पटुशिष्य जो था। उनका मानस पुत्र था बालक भीमराव। उन्होंने उनके शाला के रेकार्ड में भी यह परिवर्तन करवा दिया। तब से भीमराव का नाम, भीमराव सकपाल और फिर भीमराव अम्बावडेकर से पलटकर ''भीमराव अम्बेडकर'' हो गया। जगत में वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। एक ब्राह्मण शिक्षक का उपनाम उनके साथ जुड़ा इसका उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु अपने पिता तुल्य शिक्षक की भावनाओं का उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु अपने पिता तुल्य शिक्षक की भावनाओं का आदर करते हुए उस उप नाम को स्वीकार किया और जीवन पर्यन्त आदर देते रहे। वस्तुत: उनकी प्रसिद्धि 'अम्बेडकर' उपनाम के कारण नहीं हुई बल्कि उनकी तपस्या के फलस्वरूप यह उपनाम प्रसिद्ध और आदरणीय हो गया। एक ब्राह्मण का उपनाम पाकर भी भीमराव सकपाल अब्राह्मणम ही रहे। अछूत ही रहे। जाति से अछूत जो थे। विद्यार्थी भीमराव के जीवन में अछूत होने के कारण अपमानित होने की अनेक घटनाओं में एक घटना जिसने सारी कक्षा के छात्रों को चिन्ता में डाल दिया था। उनके मन को अधिक परेशान कर गई। हुआ यूं कि ब्लेक बोर्ड पर एक सवाल हल करने के लिए शिक्षक ने भीमराव को निर्देशित किया। जैसे ही वह चाक लेकर ब्लेक बोर्ड की ओर भागे और भीमराव वहां तक पहुंचे उससे पहले की ब्लेक बोर्ड को घेर लिया। हुआ यह था कि ब्लेक बोर्ड के पीछे सबके टिफन बॉक्स रखे थे। सबने अपने-अपने टिफन बॉक्स वहां से हटा लिए और फिर से अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। भीमराव के मन को इस घटना ने कुछ अधिक ही झकझोर दिया। कक्षा में सबसे योग्य विद्यार्थी होकर भी वह सबसे हीन समझा जा रहा था। भीम संभला। अपना संकल्प स्मरण किया। उसने ब्लेक बोर्ड पर सवाल हल किया और अपने स्थान पर लौट आया। इस घटना को भी पूर्व की अनेक घटनाओं की तरह सहज रूप से परे धकेल कर एक चुनौती पर अपनी जीत दर्ज कर दी। यही जीवन के प्रारंभिक अनुभव थे। भले ही वे कटु थे किन्तु थे प्रेरणास्पद। लक्ष्य की ओर बढ़ने में उन्होंने बहुत योगदान किया।

उन्होंने कहा -

''क्या दुनिया में ऐसा भी कोई समाज है जिसमें अछूत हों, जिनकी परछाई और दृष्टि मात्र से दूसरे लोग गंदे हो जाएं? क्या कोई ऐसा भी समाज है जिसमें अपराधशील जन-जातियां हों, क्या कोई ऐसा भी समाज है जिसमें आज पुराने लोग जंगलों में रहते हों और जो वस्त्र पहनना भी नहीं जानते हों? ऐसे लोगों की कितनी संख्या है? मैं समझता हूं कि ऐसे लोगों की संख्या बहुत है। दुर्भाग्य है कि लोग करोड़ों की संख्या में हैं। करोड़ों अछूत, करोड़ों अपराधशील जन-जातियां, करोड़ों प्राचीन कबीले हैं। कोई यह विचार कर सकता है कि हिन्दू सभ्यता, क्या वास्तव में 'सभ्यता' है अथवा कोई अपकीर्ति है।''■

(लेखक सम्पादक मंडल के सदस्य हैं)

अनुसूचित जातियों की शिकायतें तथा सत्ता हस्तांतरण संबंधी महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार

■ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

3. यह सच है कि यह ग्रंथ केवल सरकारी प्रयोग के लिए है। परन्तु मेरे विचार से इस तथ्य से इस ग्रंथ का महत्व कम नहीं हो जाता। यह निर्विवाद सत्य है कि अधिकारियों की सोच ही अधिकांशतया वह दिशा निर्धारित करती है जिससे राज्य के आधार पर राज्य की नीति का निर्धारण किया जाता है। इससे वह महत्व भी सुनिश्चित होता है जो उसे सम्प्रदायों के हितों के मुद्दों को देना चाहिए। यह भी निर्विवाद सत्य है कि कर्मचारी की प्रवृत्ति और सोच इस प्रकार की सामग्री द्वारा निर्धारित होती है जो उसे प्रस्तुत की जाती है और ये तथ्य इसी प्रकार के ग्रंथ में दिए जाते हैं। सरकार द्वारा किसी उद्देश्य के लिए सरकारी प्रकाशन में किया जाने वाला प्रचार उसके द्वारा उतने महत्व का समझा जाएगा जो सरकार उसके साथ सम्बद्ध करती है तथा अलग-अलग समुदायों की आवश्यकताओं और दावों का मूल्यांकन करने के लिए उसका मार्गदर्शन करेगा। इस विचार की दृष्टि से यह ग्रंथ निश्चय ही केन्द्रीय सचिवालय और प्रांतीय सरकारों में काम करने वाले अधिकारियों और यहां तक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट में यह छाप छोड़ता है कि भारत सरकार अनुसूचित जातियों को नगण्य समझती है जिनके बारे में परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। यही वह प्रभाव है जो इस ग्रंथ से उभरा है और यह बात संसद में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा दिए गए भाषण से स्पष्ट है जिसमें मुसलमानों का जोरदार तथा ठोस उल्लेख किया गया है जबकि अनुसूचित जातियों के संदर्भ निक्षिप्त वाक्यांशों में दिए गए हैं। यह भारी भूल है जो उन अनुसूचित जातियों के लिए की गई है जिन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति में ऐसे सबसे जटिल समय में धक्का लगा है जब वे लोग संघर्षरत थे क्योंकि सरकार की ओर से उनके मुद्दे को असंतुलित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मैं इस बात पर जोर देना चाहूंगा कि लोक सूचना ब्यूरो को इस ग्रंथ का पूरक ग्रंथ निकालना चाहिए जिसमें अनुसूचित जातियों के आन्दोलन तथा उनके नेताओं की घोषणाओं का समावेश हो।

4. निश्चय ही सरकार कह सकती है कि वह पार्टियों और समुदायों के प्रचार कार्य के लिए बाध्य नहीं है तथा पार्टियों और समुदायों को स्वयं अपना प्रचार-कार्य करना चाहिए, परन्तु यहां बात दूसरी है। जैसा कि मैंने बताया, भारत सरकार स्वयं प्रचार-कार्य करती है इसलिए वह सभी पार्टियों को प्रचार-कार्य में समान समझने के लिए बाध्य है और उसे देश में चलने वाले आन्दोलनों और ताकतों के बारे में ठीक और सही तस्वीर प्रस्तुत करनी चाहिए।

2. सरकारी ठेकों में बन्द-द्वार

5. सार्वजनिक निर्माण कार्यों का अधिकतर काम सरकारी विभाग द्वारा न किया जाकर ठेकों के माध्यम से कराया जाता है। सामान्य काल की यही प्रणाली है। युद्ध के समय सरकार के लिए ठेके की पद्धति द्वारा किया जाने वाला कार्य कई सौ गुना बढ़ गया है। मैं केवल केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के बारे में बता सकता हूं। केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग द्वारा स्वीकृत ठेकेदारों की संख्या 1,171 है। मुझे बताया गया है कि इन ठेकेदारों में से केवल एक ठेकेदार अनुसूचित जाति का है। शेष सभी ठेकेदार हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान हैं। सरकार के लिए यह संभव है कि इन सभी बातों को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि ठेके की पद्धति सभी समुदायों को लाभ उठाने के लिए खुली रहे। अनुसूचित जातियों के ऐसे अनेक लोग हैं जिन पर सरकारी ठेका संपन्न करने के लिए

विश्वास किया जा सकता है। अनुसूचित जाति के अनेक सदस्य पहले ही से हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख ठेकेदारों के नौकरों के रूप में काम कर रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि हिन्दू, मुसलमान अथवा सिक्ख ठेकेदार लाभ उठा रहे हैं जबकि अनुसूचित जाति के लोग केवल मजदूरी पर ही काम कर रहे हैं।

6. इसमें अधिक कठिनाई नहीं होगी कि स्वीकृत ठेकेदारों की सूची में अनुसूचित जातियों के कुछ लोगों को शामिल कर लिया जाए। परन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें ठेका दिया जाए। सरकारी ठेकों के बारे में दो नियम हैं–
   (1) सामान्यतया उसी ठेकेदार को ठेका दिया जाता है जिसका टेंडर सबसे कम हो;
   (2) सरकार इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि सबसे कम लागत वाला टेंडर ही स्वीकार किया जाए।

7. इसलिए यह प्रभारी अधिकारी के स्वविवेक पर निर्भर करता है कि कोई ठेका किसी विशेष ठेकेदार को दिया जाए अथवा नहीं। इस स्वविवेक के अनुसूचित जाति के ठेकेदार के पक्ष में प्रयोग किए जाने की सम्भावना नहीं है। उसका टेंडर सबसे कम लागत का हो सकता है परन्तु अधिकारी जातिगत पक्षपात के कारण दूसरे नियम का पालन करते हुए अनुसूचित जाति के व्यक्ति का टेंडर अस्वीकार कर सकता है, क्योंकि वह अधिकारी बाध्य नहीं है कि सबसे कम लागत वाला टेंडर ही स्वीकार करे। यदि उसका टेंडर सबसे कम लागत वाले टेंडर से ऊंचा है तो वह उसे स्वीकार नहीं करेगा, यद्यपि वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है। वह उन दो नियमों में से पहले नियम का पालन करेगा। स्थिति कुछ भी क्यों न हो, उसके पास अनुसूचित जातियों के ठेकेदारों के टेंडर को रद्द करने का औचित्य मौजूद होगा।

8. परन्तु साम्प्रदायिक पक्षपात के विरुद्ध कोई उपचार नहीं है। मुझे जो बात इस मुद्दे पर समझ आती है वह यह है कि अनुसूचित जाति के ठेकेदार का टेंडर सबसे कम लागत के टेंडर से 5 प्रतिशत तक अधिक हो तो उसे सबसे कम कीमत का माना जाए। अलबत्ता इसमें वित्तीय हानि निहित है और वित्त विभाग को इस पर सहमत होना पड़ेगा। मैं इस प्रकार की रियायत की कोई अनुमानित लागत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास है कि यह बहुत अधिक नहीं होगी।

परन्तु साम्प्रदायिक पक्षपात के विरुद्ध कोई उपचार नहीं है। मुझे जो बात इस मुद्दे पर समझ आती है वह यह है कि अनुसूचित जाति के ठेकेदार का टेंडर सबसे कम लागत के टेंडर से 5 प्रतिशत तक अधिक हो तो उसे सबसे कम कीमत का माना जाए। अलबत्ता इसमें वित्तीय हानि निहित है और वित्त विभाग को इस पर सहमत होना पड़ेगा। मैं इस प्रकार की रियायत की कोई अनुमानित लागत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास है कि यह बहुत अधिक नहीं होगी।

अध्याय 4
पीड़ित लोगों के प्रति सरकार का कर्त्तव्य

1. अनुसूचित जातियों की ओर से इस ज्ञापन में कुछ प्रस्ताव किए गए हैं। इनमें विशेष रूप से ऐसे प्रस्ताव हैं जिनका संबंध राजनीतिक शिकायतों को दूर करना है तथा इनसे सरकारी खजाने पर वित्तीय भार नहीं पड़ता। वे वास्तव में प्रस्ताव कम हैं राजनीतिक मांगें अधिक, जैसा कि उनके संबंध में दिए गए तर्कों और न्याय की दृष्टि से प्रतीत होता है तथा सरकार को उन्हें स्वीकार करना चाहिए। कठिनाई उसी समय उठती है जब ऐसे प्रस्ताव स्वीकार किए जाएं जिनमें केन्द्रीय सरकार के राजस्व का वित्तीय भार निहित होता है। इसमें वित्तीय भार निहित तो है, परन्तु इन्हें इस आधार पर ही रद्द नहीं किया जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अनुसूचित जातियों की ओर सरकार का कर्तव्य है, और यदि सरकार इस बारे में अपना कर्तव्य स्वीकार करती है तो उसे इस कर्तव्य को निभाना पड़ेगा, चाहे इसमें सरकारी खजाने पर वित्तीय भार ही क्यों न पड़े।

2. अनुसूचित जातियों को लेकर ब्रिटिश सरकार की नीति पूर्णतया और लगातार लापरवाही की रही है। ऐसा प्रारंभ से ही हुआ जब ब्रिटिश सरकार ने यह महसूस किया कि उसका कर्तव्य केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने का ही नहीं है अपितु लोगों को शिक्षित करने तथा उनके कल्याण को भी देखने का है। यह बात वर्ष 1850–51 की बम्बई प्रेसीडेंसी के शिक्षा बोर्ड की

रिपोर्ट से प्रस्तुत निम्न उद्धरण से स्पष्ट होगी:-

भारत के उच्च वर्गों की जांच

'पैरा 16—यह तथ्य प्रदर्शित होने पर कि जनसंख्या के एक छोटे भाग को ही भारत में सरकारी शिक्षा के प्रभाव में लाया जा सकता है, और माननीय कोर्ट के इस निर्णय पर कि इस श्रेणी में 'उच्च वर्गों' को शामिल किया जाए, यह पता लगाना आवश्यक है कि ये वर्ग कौन-कौन से हैं।

भारत में उच्च वर्ग

'पैरा 17—ऐसे वर्ग जिन्हें प्रभावशील माना जा सकता है, और जहां तक भारत में उच्च वर्गों का संबंध है, वे इस प्रकार वर्गीकृत किए जा सकते हैं:-

प्रथम—जमींदार और जागीरदार, पूर्व सामन्तवादियों के प्रतिनिधि और देशी शक्तियों के अधीन कार्यरत प्रभावशाली अधिकारी तथा वे लोग जिन्हें सैनिक वर्ग का कहा जाता है।

द्वितीय—ऐसे व्यक्ति जिन्होंने व्यापार या वाणिज्य में धन अर्जित कर लिया है अथवा वाणिज्यिक वर्ग के हैं।

तृतीय—सरकार के उच्च स्तरीय पदाधिकारी।

चतुर्थ—ब्राह्मण और उनके बाद उच्च जातियों के लेखक जो कलम के सहारे जीवनयापन करते हैं और बम्बई में 'प्रभु' और 'सीनवी' और बंगाल में 'कायस्थ' हैं, बशर्ते कि उन्होंने शिक्षा अथवा पद में कोई स्थान प्राप्त कर लिया हो।

ब्राह्मण — सबसे अधिक प्रभावशाली

'पैरा 18—इन चार वर्गों में से तुलनात्मक रूप से सबसे अधिक प्रभावशाली सबसे अधिक जनसंख्या वाले और कुल मिलाकर सरकार जिनसे अपना काम अधिक सरलता से निकलवा सकती है, वे चौथे वर्ग के लोग हैं। भारत भर में यह तथ्य भलीभांति विदित है कि प्राचीन जागीरदार अथवा सैनिक वर्ग हमारे शासन के अंतर्गत प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे हैं।

कुछ अपवाद को छोड़कर वाणिज्यिक वर्गों में भी उच्च शिक्षा के प्रभाव के लिए अधिक गुंजाइश नहीं है।

* * * *

अतः में, राज्य के कर्मचारी, यद्यपि वे ऐसे काफी लोगों पर अपना प्रभाव रखते हैं जो सरकार के सम्पर्क में आते हैं तथापि उनका प्रभाव उससे भी बड़ी संख्या वाले उन लोगों पर नहीं है जो सरकार से स्वतंत्र हैं।

ब्राह्मण की गरीबी

पैरा 19—ऊपर किया गया विश्लेषण चाहे लम्बा प्रतीत होता हो फिर भी यह अपरिहार्य है और इससे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। सबसे पहले इससे यह प्रदर्शित होता है कि ऐसे प्रभावशाली वर्ग के अन्तर्गत ब्राह्मण तथा उनके समीप की उच्च जातियां आती हैं जिनके बारे में सरकार समझती है कि वह उनमें शिक्षा के बीज बो सकती है।

निम्न जातियों को शिक्षित करने का प्रश्न

'पैरा 21—इन तथ्यों से यह व्यावहारिक निष्कर्ष निकलता है, जो वर्षों के हमारे अनुभवों पर आधारित है, कि उन गरीब उच्च वर्गों के बच्चों के लिए शिक्षा के थोड़े द्वार खोल दिए जाने चाहिए जो हमसे शिक्षा पाने के लिए लालायित हैं। परन्तु यहां उलझन में डालने वाला एक प्रश्न उठता है जिसकी ओर ध्यान देना जरूरी है। यदि गरीब लोगों के बच्चे निःशुल्क सरकारी संस्थाओं में प्रवेश पा सकते हैं तो सभी दलित जातियों यथा ढेड, महार आदि को उनके परिसर में अधिक संख्या में एकत्र होने से कौन रोक सकता है?

हिन्दुओं का सामाजिक भेदभाव

पैरा 22—इस बात में बहुत कम संदेह है कि यदि बम्बई में इस चौथे वर्ग की श्रेणी तैयार करनी है तो उन्हें ऐसे प्रोफेसरों और अध्यापकों के प्रभाव के अधीन प्रशिक्षित किया जाए जो बोर्ड की सेवा में कार्यरत हैं और वे समाज के उच्च बौद्धिक लोग बन जायेंगे, और इस प्रकार योग्यताएं प्राप्त कर लेने पर उन्हें यह आकांक्षा करने से नहीं रोका जा सकता कि वे ऐसे उच्चतम पदों पर आसीन हों जो देशी लोगों के लिए खुले हैं—जज, ग्रेड ज्यूरी और शांति के लिए महामहिम के आयोग के सदस्य। अनेक उदार व्यक्तियों का विचार है कि ब्रिटिश सरकार की इस अति संकुचित और कमजोर नीति से इस प्रकार की नियुक्तियों के परिणामस्वरूप हिन्दू समुदाय में भारी क्षोभ उत्पन्न होगा, और जाति के बंधनों पर खुलकर आक्रमण किया जाना चाहिए।

माननीय माउंट स्टुअर्ट एलफिन्सटोन का बुद्धिमत्तापूर्ण अवलोकन

पैरा 23—परन्तु इसके साथ श्री एलफिन्सटोन के विवेकशील विचार हैं, जो भारत के सबसे उदार और खुले दिमाग के प्रशासक थे। उनका कहना है कि मिशन कार्यकर्ता निम्नतम जातियों में अपने सबसे श्रेष्ठ शिष्य पाते हैं, परन्तु हमें इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि हम उस प्रकार के लोगों को कैसे विशेष प्रकार का प्रोत्साहन प्रस्तुत करें। वे केवल सबसे अधिक तिरस्कृत ही नहीं माने जाते, परन्तु समाज के बड़ी जनसंख्या वाले समुदायों में सबसे कम जनसंख्या वाले हैं तथा यह आशंका है कि यदि हमारी शिक्षा पद्धति की जड़ पहले उन्हीं लोगों में जमती है तो यह फिर कभी भी विस्तृत नहीं हो पाएगी और हम एक ऐसा नवीन वर्ग अपने सम्मुख पायेंगे जो ज्ञान में अन्यों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होगा परन्तु ऐसी जातियों द्वारा तिरस्कृत होगा और जो चाहेंगी कि हम उन्हें वरीयता प्रदान करें। इस प्रकार की स्थिति तब तो वांछनीय होगी जब हम अपनी सेना के बल पर अपनी शक्ति बनाए रखने को वरीयता देते अथवा जनसंख्या के एक भाग से सम्बद्ध हो जाते, परन्तु और अधिक विस्तृत आधार पर इसकी नींव डालने के प्रत्येक प्रयास से यह असंगत है।'

* * * *

3. ऐसा है अनुसूचित जातियों की ओर सरकारी विरोध जिसके आधार पर

सरकार ने भारतीयों को शिक्षा देने की नीति बनाई है। यह नीति कड़ाई के साथ लागू की गई। महार (अछूत) बच्चे का एक मामला रिकार्ड किया गया है। उस बालक ने 1856 में भारत सरकार को यह प्रतिवेदन दिया था कि उसे धारवाड़ जिले के गवर्नमेंट स्कूल में दाखिल किया जाए। सरकार ने जो संकल्प जारी किया, वह इस प्रकार है :-

''पत्रव्यवहार में जो प्रश्न उठाया गया है, उसमें बहुत व्यावहारिक कठिनाई है।''

''1. इसमें कोई संदेह नहीं कि न्याय महार आवेदक के पक्ष में है; और सरकार यह विश्वास करती है कि ऐसे भेदभाव हैं जो उसे धारवाड़ में शिक्षा के वर्तमान साधनों को उपलब्ध कराने से वंचित करते हैं, और आशा करती है कि वे शीघ्र दूर हो जायेंगे।

'परन्तु सरकार यह बात ध्यान में रखने के लिए बाध्य है कि वर्षों पुराने भेदभावों में हस्तक्षेप करना सरसरी तौर पर ठीक नहीं है। किसी एक अथवा कुछ व्यक्तियों के लिए ऐसा करना शायद शिक्षा को अधिक हानि पहुंचाना होगा। आवेदक को जो हानि है, वह ऐसी हानि नहीं है जिसकी उत्पत्ति इस सरकार के साथ हुई है और यह ऐसी हानि नहीं है जिसे सरकार आवेदक के पक्ष में सरसरी तौर पर दूर करने के लिए हस्तक्षेप कर सके जैसा कि आवेदक ने प्रार्थना की है।'

4. वर्ष 1882 में, भारत सरकार ने शिक्षा-नीति की जांच के लिए हंटर कमीशन नियुक्त किया था। इस कमीशन ने मुसलमानों में शिक्षा प्रसार के लिए कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव प्रस्तुत किए। परन्तु इसने अछूतों के लिए कुछ नहीं किया। उस कमीशन ने जो कुछ भी किया, वह महज उनके इस मत की अभिव्यक्ति थी कि 'सरकार को एक सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिए कि किसी विद्यार्थी को

जब विरोध की भावना समाप्त हुई, तो इसका ध्यान लापरवाही और उपेक्षा ने ले लिया। इस लापरवाही और उपेक्षा ने शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु अन्य क्षेत्रों में भी, विशेषतया सेना के क्षेत्र में, घुसपैठ की। ईस्ट इंडिया कम्पनी की पूरी सेना में दलित वर्गों के लोग थे। वास्तव में दलित वर्गों की सेना की ही ब्रिटिश शासन को सहायता मिली, अन्यथा ब्रिटिश शासन को भारत पर विजय पाना कठिन था। 1892 तक सेना में अछूत भर्ती होते रहे। यकायक 1892 में सेना में अछूतों की भर्ती बन्द कर दी गई तथा वे शोचनीय स्थिति में छोड़ दिये गए, जब उनकी कोई शिक्षा नहीं थी और सम्मानीय जीवन बिताने के लिए कोई मार्ग भी नहीं थे।

गवर्नमेंट कॉलेज या स्कूल में जाति के आधार पर प्रवेश पाने से इनकार नहीं किया जाएगा, परन्तु यह भी कहा कि इस सिद्धान्त को 'सावधानीपूर्वक लागू करना चाहिए।'

5. जब विरोध की भावना समाप्त हुई, तो इसका ध्यान लापरवाही और उपेक्षा ने ले लिया। इस लापरवाही और उपेक्षा ने शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु अन्य क्षेत्रों में भी, विशेषतया सेना के क्षेत्र में, घुसपैठ की। ईस्ट इंडिया कम्पनी की पूरी सेना में दलित वर्गों के लोग थे। वास्तव में दलित वर्गों की सेना की ही ब्रिटिश शासन को सहायता मिली, अन्यथा ब्रिटिश शासन को भारत पर विजय पाना कठिन था। 1892 तक सेना में अछूत भर्ती होते रहे। यकायक 1892 में सेना में अछूतों की भर्ती बन्द कर दी गई तथा वे शोचनीय स्थिति में छोड़ दिये गए, जब उनकी कोई शिक्षा नहीं थी और सम्मानीय जीवन बिताने के लिए कोई मार्ग भी नहीं थे।

6. इन अनुसूचित जातियों को उस संकट से कौन उभार सकता है जिनसे वे अब घिरी हुई हैं? यह निश्चित है कि वे लोग अपने प्रयत्न से अपनी दशा नहीं सुधार सकते। उनके साधन बहुत कम हैं, अत: वे स्वयं प्रगति नहीं कर सकते। वे हिन्दुओं की दानशीलता पर भी निर्भर नहीं कर सकते। हिन्दुओं की दानशीलता का प्रश्न भी नहीं उठता, हिन्दू अपने कार्यक्षेत्र में सम्प्रदाय-पोषक हैं और उनकी दानशीलता का लाभ वे ही लोग उठा सकते हैं जो दानदाता के समुदाय के हैं। हिन्दू दानदाता या तो व्यापारी हैं या उच्च जाति के लोग हैं। दु:ख इस बात का है कि हिन्दू आम जनता से धन एकत्र करते हैं, परन्तु जब दान करने का प्रश्न उठता है तब वे जनता को भूल जाते हैं और केवल अपनी जाति और समुदाय को ही याद रख पाते हैं। अनुसूचित जातियों को ये साधन उपलब्ध नहीं हैं तथा वे उस दान की राशि से भी वंचित कर दिए जाते हैं जिसे दोनों ने

एकत्र किया है। इसलिए उनके लिए केवल एक ही स्रोत शेष रह जाता है जिसका संबंध उस वित्तीय सहायता से है जो उन्हें सरकार द्वारा मिल सकती है। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यह केन्द्रीय सरकार का कर्तव्य है कि वह ऐसे लोगों की रक्षा करे जिनका संकट अपनी किसी भूल के कारण पैदा नहीं हुआ है। सरकार अनुसूचित जातियों की सहायता करने के लिए कदम उठा सकती हैं ताकि अनुसूचित जातियां अपने न्यायसंगत दावों को स्वीकार करा सकें और अपने प्रतियोगियों के साथ समान शर्तों पर प्रतियोगिता कर सकें। यह कोई असाधारण बात नहीं है कि केन्द्रीय सरकार से यह कहा जाए कि अनुसूचित जातियों की दशा सुधारने के लिए विशेष ध्यान दिया जाए। उन व्यक्तियों को यह सोचना चाहिए कि भारत सरकार ने एंग्लो-इंडियन समुदाय के कल्याण की सुरक्षा के लिए जो कुछ किया है वह अनुसूचित जातियों के लिए भी किया जाए। मैं उनमें से कुछ का जिक्र करूंगा।

(1) अधिक वेतन

एक समय था जब एंग्लो-इंडियन को भारतीय से अधिक वेतन मिला करता था। एंग्लो-इंडियन और भारतीय वेतन का अंतर नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट जो जाएगा, जिसमें तीन रेलवे क्षेत्रों के कुछ पदों के लिए वेतन के आंकड़े दिए गए हैं और उदाहरण के तौर पर इन आंकड़ों का नमूने के रूप में चयन किया गया है :-

पद	एंग्लो-इंडियन	भारतीय
नार्थ-वेस्टर्न रेलवे		
स्थायी पथ-निरीक्षक	625-25-675 550-25-600	475-25-500 400-25-450
ड्राइवर	260-10-280	1 रुपए से 1 रु. 14 आने प्रतिदिन। विशेष दर दो रुपए प्रतिदिन
ईस्ट इंडिया रेलवे		
गाड़ी-परीक्षक	300-25-400 200-20-280	120-15-180
जी.पी.आई. रेलवे		
मुख्य ट्रेन परीक्षक	275 315 365	125-275
वाशिंग चार्जमेन	145	115

वेतन का यह अंतर 1920 तक जारी रहा। इसके बाद इसे समाप्त कर दिया गया। अब भी केवल एक अंतर शेष है कि एंग्लो-इंडियन को 55 रु. प्रतिमाह मूल वेतन दिया जाता है। उसे यह वेतन उस स्थिति में भी मिलता है जब वह स्टेट रेलवे में चपरासी के पद पर नियुक्त किया जाता है, जबकि भारतीय चपरासी को केवल 13-15 रु. मिलते हैं। एंग्लो-इंडियन के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार से इसकी सरकारी खजाने से लागत प्रतिवर्ष डाक-तार विभाग के लिए दस हजार रुपये, सरकार द्वारा प्रबंधित रेलवे के लिए 75 हजार रुपए और कम्पनी द्वारा प्रबंधित रेलवे के लिए 75 हजार रुपये अर्थात् कुल मिलाकर एक लाख पचास हजार रुपये होती है।

(2) एंग्लो-इंडियन को सफलतापूर्वक प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए तार विभाग की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए अंकों में कमी प्रत्येक विषय में 50 प्रतिशत से घटा कर 40 प्रतिशत और कुल अंकों में 66 प्रतिशत से घटाकर 60 प्रतिशत की जाती है।

7. स्टीवार्ट समिति द्वारा अनेक सिफारिशें की गई हैं जिनके अनुसार भारतीयों से अधिक एंग्लो-इंडियन लोगों को विशेष लाभ दिए गए हैं। परन्तु मैं इस ज्ञापन को उनसे संबंधित तथ्यों से बोझिल नहीं बनाना चाहता। मेरी इस बात में रुचि है कि एंग्लो-इंडियन और अनुसूचित जातियों के लिए दिए गए व्यवहार में तुलनात्मक अन्तर स्पष्ट किया जाए। एंग्लो-इंडियन के लिए चिंता तथा भारतीयों के लिए लापरवाही स्पष्ट रूप से उजागर है। वह क्या बात है जो इस विरोध को संगत ठहरा सकती है? मेरी समझ से ऐसा कुछ भी नहीं है। यदि सरकार शीघ्र ही अनुसूचित जातियों की सहायता करे तो सरकार को न्यायप्रिय समझा जाएगा। सरकार इच्छा से एंग्लो-इंडियन के उत्थान के लिए प्रतिवर्ष 1,50,000 रुपए व्यय करती है और यदि सरकार चाहे तो कुछ लाख रुपये अनुसूचित जातियों के लिए भी व्यय कर सकती है।

भाग 2

सत्ता हस्तान्तरण संबंधी महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार

1

सर एस. क्रिप्स की टिप्पणी

(एल/पी एण्ड जे/10/4: एफ एफ 51-2)

दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व कर रहे डॉक्टर अम्बेडकर और श्री राजा के साथ साक्षात्कार

30 मार्च, 1942

दलित वर्गों, विशेषकर मद्रास और बम्बई के दलित वर्गों, की दशा के बारे में बताते हुए उन्होंने मुझसे यह कहा कि वर्तमान चुनाव पद्धति के अनुसार दलित वर्गों को संविधान सभा में बहुत ही कम प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा क्योंकि संविधान सभा में उनके अधिकतर तथाकथित प्रतिनिधि कांग्रेस के हैं और इसलिए दलित वर्गों की स्थिति बहुत कमजोर होगी। उन्होंने उन मांगों का सारांश रूप प्रस्तुत किया जिन्हें वे संविधान सभा के समक्ष रखना चाहते हैं और इसके बाद

मुझसे पूछा कि क्या हमने कभी सोचा है कि वे जातीय और धार्मिक दृष्टि से अल्प-संख्यक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं जिसके बारे में मैंने उत्तर में 'हां' कहा तथा बताया कि उनके संरक्षण के लिए संधि में किस प्रकार व्यवस्थाएं की जायेंगी। मैंने बताया कि ये संरक्षण लीग ऑफ नेशन्स की अल्पसंख्यक संधियों के आधार के अनुरूप होंगे और यदि पहले ही संविधान में विशेष उपबंध हुए तो उन्हें शायद संधि में दोहराया जाएगा और विवाद के मामलों में यह दायित्व होगा कि इन्हें किसी बाह्य प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। भारत सरकार इस प्रकार के निर्णय से बाध्य होगी और यदि सरकार ने ऐसा नहीं किया तो इसे संधि-विच्छेद माना जाएगा। इसके फलस्वरूप, ब्रिटिश सरकार ऐसे कदम उठाएगी, जो विशेष परिस्थितियों में बुद्धिसम्मत समझे जाएं। मैंने बताया कि यद्यपि संरक्षण का यह रूप निस्संदेह उनके लिए अपर्याप्त समझा जाएगा, तथापि स्वायत्त शासन तथा भारत में आत्मनिर्णय के विचार की स्वीकृति दे दिए जाने के बाद ऐसा कोई मार्ग संभव नहीं होगा जिससे हम भारत में किसी अल्पसंख्यक के बचाव के लिए हस्तक्षेप कर सकें।

जहां तक अंतरिम अवधि का संबंध है, मैंने यह बताया कि ऐसी संभावनाएं दलित वर्गों के कुछ प्रतिनिधियों के लिए हो सकती हैं कि उन्हें केंद्र में कार्यकारी परिषद में लिया जाए और इस परिषद के प्रथम कार्यों में से एक कार्य निस्संदेह यह होगा कि प्रांतीय सरकारों के चलाने के संबंध में कुछ अस्थायी प्रबंध किए जाएं।

श्री अम्बेडकर ने यह विचार व्यक्त किया कि वे लोग इस बात की मांग करेंगे कि उन्हें वायसराय द्वारा नवीन कार्यकारी परिषद के गठन में परामर्श देने के लिए कहा जाए और उन्हें प्रमुख तत्वों में से एक तत्व माना जाए। मैंने यह बताया कि यह मामला मुझसे संबंधित नहीं है। वायसराय को स्वयं अपने निर्णय को कार्यान्वित करना था कि वह इस मामले में परामर्श के लिए किसे बुलाएं।

स्वाभाविक रूप से वे इस पूरी स्थिति के प्रति बहुत प्रसन्न नहीं थे, परन्तु मुझे यह सूचना नहीं मिली कि वे इस योजना का विरोध करेंगे क्योंकि ऐसा अन्य कोई विकल्प नहीं था जिसके अधीन वे अपने संरक्षण के लिए इससे अधिक अच्छा साधन प्राप्त कर सकें।

डॉ. अम्बेडकर ने यह विचार व्यक्त किया कि वे लोग इस बात की मांग करेंगे कि उन्हें वायसराय द्वारा नवीन कार्यकारी परिषद के गठन में परामर्श देने के लिए कहा जाए और उन्हें प्रमुख तत्वों में से एक तत्व माना जाए। मैंने यह बताया कि यह मामला मुझसे संबंधित नहीं है। वायसराय को स्वयं अपने निर्णय को कार्यान्वित करना था कि वह इस मामले में परामर्श के लिए किसे बुलाएं।

2

डॉ. अम्बेडकर और श्री राजा का सर एस. क्रिप्स को पत्र

सीएमडी 6350

1 अप्रैल, 1942

जब हम आपसे 30 मार्च को मिले थे तो आपको हमने बताया था कि भारत के संवैधानिक विकास से संबंधित महामहिम सरकार के प्रस्ताव दलित वर्गों को स्वीकार नहीं होंगे और उन कारणों को भी हमने साक्षात्कार के समय आपके समक्ष प्रस्तुत किया था। तब से हमने विभिन्न प्रांतीय और केन्द्रीय विधान सभाओं में दलित वर्गों के अनेक प्रतिनिधियों से परामर्श किया है और उन सभी ने सर्वसम्मति से उस विचार की पुष्टि की है जो हमने इन प्रस्तावों के संबंध में आपके समक्ष रखे थे।

हम सभी का दृढ़ विश्वास है कि ये प्रस्ताव दलित वर्गों को अधिकतम हानि पहुंचाने वाले हैं और निश्चित रूप से उन्हें हिंदू-राज्य पद्धति के अधीन कर देंगे। इस प्रकार का कोई भी परिणाम जो हमें अतीत के अंधकार युग में ले जाता हो, हमारे द्वारा कभी भी सहन नहीं होगा और हम सभी इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं कि यदि हमारे लोगों पर ऐसा संकट आएगा तो हम अपने समस्त साधनों से उसका डटकर सामना करेंगे।

हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि आप दलित वर्गों के भविष्य के संबंध में हमारी घोर चिंता महामहिम को बता दें और उनके मन में यह धारणा पैदा कर दें कि हम इसे विश्वासघात समझेंगे यदि महामहिम की सरकार दलित वर्गों के लिए ऐसे संविधान को लागू कराने का निर्णय करे जिसके लिए उन्होंने अपनी उन्मुक्त और स्वैच्छिक अनुमति नहीं दी हैं तथा जिनमें वे सभी उपबंध नहीं है जो दलित वर्ग के हितों को सुरक्षित रखने के लिए होने चाहिए।

अंत में हम आपको यह मानने के लिए धन्यवाद देना चाहते हैं कि आपने हमें प्रतिनिधि की हैसियत से बुलाया है और महामहिम की सरकार ने दलित वर्गों को अल्पसंख्यक पार्टी नहीं समझा है– जिससे कुछ संदेह हमारे मन में उभरा है जिसके बारे में हमने आपसे निवेदन किया है कि इस स्थिति की सही परिभाषा की जाए।■

(शेष अगले अंक में)

20वीं सदी में अर्थशास्त्र एवं समकालीन आर्थिक मुद्दों पर
डॉ. अम्बेडकर के वैचारिक योगदान एवं उनकी प्रासंगिकता

■ डॉ. बिबेक कुमार रजक

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर 20वीं सदी के विश्व के महानतम बुद्धिजीवियों में से एक थे। आम तौर पर उन्हें मूलत: भारत के संविधान निर्माता के रूप में ही पहचाना और जाना जाता है। परन्तु जब हम उनकी शिक्षा और उनके द्वारा किये गए शोध कार्य का विस्तृत अध्ययन करते हैं तो मालूम पड़ता है कि उनको वैश्विक मुद्दों एवं अर्थशास्त्र विषय का सटीक ज्ञान था। इस छोटे से लेख के जरिये मैं अर्थशास्त्र विषय में उनके योगदान, जिसके बारे में कम लोग लिखते और जानते हैं, के संबंध में संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत कर रहा हूं ताकि शोधकर्ताओं द्वारा इस विषय पर और अधिक विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया जा सके। अर्थशास्त्र विषय पर डॉ. अम्बेडकर की पकड़ एवं उनके योगदान का अंदाजा इस विषय पर उनके द्वारा किये गए विभिन्न शोध कार्यों से लगता है; जिन पर हम इस लेख के दूसरे भाग में चर्चा करेंगे। इससे पहले कुछ वर्तमान विभूतियों की डॉ. अम्बेडकर के बारे में राय का उल्लेख करते हैं।

वर्ल्ड बुद्धिस्ट रेडियो के कार्यक्रम में प्रोफेसर अमर्त्य सेन, जो अर्थशास्त्र विषय में नोबेल पुरस्कार पाने वाले इकलौते भारतीय और आज के समय में विश्व के अग्रणी अर्थशास्त्रियों में से एक हैं, कहते हैं कि- ''मैं डॉ. अम्बेडकर को अर्थशास्त्र में पिता के समान समझता हूं।'' डॉ. अम्बेडकर समाज के वंचित-शोषित तबके के सच्चे नायक हैं। उन्होंने आज तक जो कुछ अर्जित किया, वास्तव में उससे कहीं ज्यादा के हकदार हैं। उनका व्यक्तित्व अपने देश में काफी विवादास्पद रहा है, हालांकि वास्तविकता इसके विपरीत है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उनका योगदान अद्‌भुत और शानदार रहा है, जिसके लिए हमेशा उन्हें याद किया जाएगा। "जब हिन्दुत्ववादी कार्यकर्ता यह उद्‌घोष करते हैं कि हम सभी मूलत: हिन्दू हैं, तो यह सहिष्णुता के सन्दर्भ में अपने बहुसांस्कृतिक सरोकार को भूलने जैसा है। हम अपने को धार्मिक संकीर्णता की कोठरी में कैद कर लेते हैं। मेरे विचार से एकल पहचान को बढ़ावा देना आज के दौर में जारी वैमनस्य, हिंसा और आतंकवाद का बड़ा कारण है।"

History TV 18 और CNN & IBN द्वारा 2012 में किए गए सर्वेक्षण में यह पूछा गया था कि महात्मा गांधी के बाद महानतम भारतीय कौन है, इस कार्यक्रम के अंतिम परिणाम में डॉ. अम्बेडकर को विजेता के रूप में घोषित किया गया। कार्यक्रम में जाने माने इतिहासकार रामचंद्र गुहा कहते हैं कि डॉ. अम्बेडकर एक महान विद्वान्, संस्थापक और आर्थिक विचारक थे।

19वीं सदी के उत्तरार्ध और 20वीं सदी के आरम्भिक दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था से जुड़े सभी महत्त्वपूर्ण आर्थिक मुद्दों और समस्याओं पर डॉ. अम्बेडकर ने शोध कार्य किया जिनमें से प्रमुख हैं– भारतीय मुद्रा (रुपए) की समस्या, महंगाई तथा विनिमय दर, भारत का राष्ट्रीय लाभांश, ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास, प्राचीन भारतीय वाणिज्य, ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन एवं वित्त, भूमिहीन मजदूरों की समस्या तथा भारतीय कृषि की समस्या इत्यादि। उन्होंने इन महत्त्वपूर्ण विषयों पर केवल शोध ही नहीं किया बल्कि इन मुद्दों से सम्बंधित समस्याओं के तार्किक एवं व्यावहारिक समाधान भी दिए। 20वीं सदी की शुरुआत में विश्व के लगभग सभी

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक मुद्दों और उनसे जुड़ी समस्याओं के प्रति डॉ. अम्बेडकर की समझ तथा उनके द्वारा बताये गए उपाय को सराहा तथा उनके शोध पर महत्त्वपूर्ण और सकारात्मक टिप्पणियां भी कीं।

डॉ. अम्बेडकर के उपरोक्त शोध कार्यों में से मैं कुछ प्रमुख कार्यों और योगदान का विवरण देना चाहूंगा जो आज के समय में भी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रासंगिक हैं:

- The Problem of the Rupee : Its origin and Its Solution (1923) में डॉ. अम्बेडकर ने 1800 से 1893 के दौरान विनिमय के माध्यम के रूप में भारतीय मुद्रा (रुपये) के विकास का परीक्षण किया और उपयुक्त मौद्रिक व्यवस्था के चयन की समस्या की भी व्याख्या की। वर्तमान समय में भी भारतीय अर्थव्यवस्था मुद्रा के अवमूल्यन और मुद्रास्फीति की समस्या से जूझ रही है, अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के मुकाबले भारतीय मुद्रा के मूल्य कम हो रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर के शोध के परिणामों से इन समस्याओं को समझा जा सकता है एवं इनका समाधान निकाला जा सकता है।
- The Evolution of Provincial Finance in British India (1925) की प्रासंगिकता आज भी है। अब भी हमारे देश में हम कर प्रणाली को सरल करने की बात कर रहे हैं। उन्होंने इस शोध के जरिये तत्कालीन सरकारी राजकोषीय व्यवस्था को स्वतंत्र करने पर जोर दिया था।
- 1918 में प्रकाशित अपने लेख Small Holdings in India and their Remedies में डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय कृषि तंत्र का स्पष्ट अवलोकन किया था। उन्होंने भारतीय कृषि तंत्र का आलोचनात्मक परीक्षण करके उससे कुछ महत्वपूर्ण परिणाम निकाले। उनके अनुसार उत्पादन के अनेक साधनों में से भूमि एक महत्वपूर्ण साधन है एवं एक साधन की उत्पादकता उसके अन्य साधनों के साथ संयोग पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, इष्टतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए उत्पादन के प्रत्येक साधन का अनुकूलतम प्रयोग आवश्यक है। यह तभी संभव है जब उत्पादन के प्रत्येक साधन को उसकी आवश्यक क्षमता के अनुसार प्रयोग किया जाए तथा साधनों के संयोग के अनुपात में परिवर्तन भी गतिशील होना चाहिए। उपरोक्त तथ्यों से उन्होंने कहने का प्रयास किया है कि यदि कृषि को अन्य आर्थिक उद्यमों के समान माना जाए तो बड़ी और छोटी जोतों का भेद समाप्त हो जाएगा। उनका प्रश्न था कि यदि ऐसा होता है तो समस्या क्या है? उनके अनुसार उत्पादन के अन्य साधनों की अपर्याप्तता में इसका उत्तर निर्भर करता है।
- डॉ. अम्बेडकर ने विकास के आधुनिक विचारकों से बहुत पहले ही छिपी बेरोजगारी या अल्प-रोजगार जैसी महत्वपूर्ण धारणाओं पर क्रमबद्ध विचार दिया। उनके अनुसार जमीन के छोटे से हिस्से पर जनसंख्या की अधिक मात्रा कृषि कार्य पर निर्भर है अर्थात कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव होने के कारण कृषि क्षेत्र में कार्यरत जनसंख्या

सन 1918 में प्रकाशित अपने लेख Small Holdings in India and their Remedies **में डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय कृषि तंत्र का स्पष्ट अवलोकन किया था। उन्होंने भारतीय कृषि तंत्र का आलोचनात्मक परीक्षण करके उससे कुछ महत्त्वपूर्ण परिणाम निकाले। उनके अनुसार उत्पादन के अनेक साधनों में से भूमि एक महत्त्वपूर्ण साधन है एवं एक साधन की उत्पादकता उसके अन्य साधनों के साथ संयोग पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, इष्टतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए उत्पादन के प्रत्येक साधन का अनुकूलतम प्रयोग आवश्यक है। यह तभी संभव है जब उत्पादन के प्रत्येक साधन को उसकी आवश्यक क्षमता के अनुसार प्रयोग किया जाए तथा साधनों के संयोग के अनुपात में परिवर्तन भी गतिशील होना चाहिए। उपरोक्त तथ्यों से उन्होंने कहने का प्रयास किया है कि यदि कृषि को अन्य आर्थिक उद्यमों के समान माना जाए तो बड़ी और छोटी जोतों का भेद समाप्त हो जाएगा। उनका प्रश्न था कि यदि ऐसा होता है तो समस्या क्या है? उनके अनुसार उत्पादन के अन्य साधनों की अपर्याप्तता में इसका उत्तर निर्भर करता है।**

निष्क्रिय है। यदि पूंजीपति उद्यमियों के द्वारा कृषि योग्य भूमि को बढ़ाया जाता है तो भी इस समस्या का समाधान नहीं होगा बल्कि निष्क्रिय मजदूरों की संख्या बढ़ेगी तथा इससे समस्या और गंभीर हो जाएगी। इससे निकलने का एक ही उपाय यह है कि लोगों को कृषि क्षेत्र से बाहर रखा जाए अर्थात् अन्य क्षेत्रों को बढ़ावा देकर उनमें रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जाएं। इससे भूमि पर से जनसंख्या का भार कम होगा तथा छोटी जोतें अपने आप ही शुद्ध लाभ प्राप्त करेंगी। आज भी देश के कुछ अर्थशास्त्री कहते हैं कि ग्रामीण क्षेत्र में गैर कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देकर ही छिपी बेरोजगारी और अल्प बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।

- हम सभी जानते हैं कि अन्य साधनों के साथ-साथ भूमि के वितरण में आज भी भारी असमानता व्याप्त है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि आज भी भारत में भूमि सुधार की जरूरत है। हम सभी यह भी जानते हैं कि कागजों में हमने 1950 के दशक में भूमि सुधार किया, पर हम में से कम लोग इस बात को जानते हैं कि डॉ. अम्बेडकर ने भू-सुधार कार्यक्रम को बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यदि उनकी समझ के हिसाब से उस कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जाता तो शायद वर्तमान समय में भूमि के वितरण में इतनी असमानता व्याप्त नहीं होती।
- भारत में आर्थिक नियोजन तथा समकालीन अन्य आर्थिक मुद्दों एवं दीर्घकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए जिन संस्थानों को आजादी के बाद और खास तौर पर 1950 के बाद स्थापित किया गया उनकी स्थापना में भी डॉ. अम्बेडकर का अहम् योगदान रहा। इनमें से प्रमुख हैं—योजना आयोग, वित्त आयोग, भारतीय रिज़र्व बैंक इत्यादि। संविधान को लिखते समय उन्होंने वित्त आयोग के जरिये ऐसी व्यवस्था बनायी जो आज भी केंद्र और राज्यों के बीच वित्त के बंटवारे में अहम् भूमिका निभा रही है। ऐसा माना जाता है कि भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना हिल्टन यंग कमीशन के सामने डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव का नतीजा है।

अर्थशास्त्र और आर्थिक मुद्दों पर डॉ. अम्बेडकर का वैचारिक योगदान उस समय के बुद्धिजीवियों में अग्रणी था। इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज भी उनकी प्रासंगिकता कुछ मायनों में उस समय से अधिक है। उनके द्वारा उठाये गए सवाल आज भी महत्त्वपूर्ण हैं, उनकी प्रासंगिकता को आज के युवा शोधकर्ता अपने शोध कार्यों के जरिये समझ कर उनका समाधान निकाल सकते हैं। मुद्रा का अवमूल्यन, मुद्रास्फीति, विनिमय दर, क्षेत्रीय वित्त, राजकोषीय व्यवस्था, संघीय वित्त व्यवस्था इत्यादि ऐसे मुद्दे हैं जिन पर डॉ. अम्बेडकर ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी इन मुद्दों पर उनके द्वारा उठाये गए सवाल प्रासंगिक हैं और यह बड़ी विडंबना है कि 65 वर्षों के आर्थिक नियोजन के बाद हम भी उन सवालों के समाधान नही ढूंढ़ पाए।

अर्थशास्त्र और आर्थिक मुद्दों पर डॉ. अम्बेडकर का वैचारिक योगदान उस समय के बुद्धिजीवियों में अग्रणी था। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि आज भी उनकी प्रासंगिकता कुछ मायनों में उस समय से अधिक है। उनके द्वारा उठाये गए सवाल आज भी महत्वपूर्ण हैं, उनकी प्रासंगिकता को आज के युवा शोधकर्ता अपने शोध कार्यों के जरिये समझ कर उनका समाधान निकाल सकते हैं। मुद्रा का अवमूल्यन, मुद्रास्फीति, विनिमय दर, क्षेत्रीय वित्त, राजकोषीय व्यवस्था, संघीय वित्त व्यवस्था इत्यादि ऐसे मुद्दे हैं जिन पर डॉ. अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी इन मुद्दों पर उनके द्वारा उठाये गए सवाल प्रासंगिक हैं और यह बड़ी विडंबना है कि 65 वर्षों के आर्थिक नियोजन के बाद भी हम उन सवालों के समाधान नहीं ढूंढ़ पाए। आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी, बेरोजगारी, आय एवं संपत्ति में व्यापक असमानता, अशिक्षा, अकुशल श्रम इत्यादि समस्याएं व्याप्त हैं। यदि देश के आर्थिक नीति बनाने वाले ने डॉ. अम्बेडकर द्वारा बताए हुए मार्ग पर चले होते तो शायद स्थिति अलग होती। इस आशा के साथ मैं इस लेख को विराम दे रहा हूं कि हमारे देश के शोधकर्ता विशेष रूप से युवा शोधकर्ता अर्थशास्त्र और देश के आर्थिक मुद्दों पर डॉ. अम्बेडकर की समझ को आगे बढ़ायेंगे।■

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं)

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर - जीवन चरित

■ धनंजय कीर

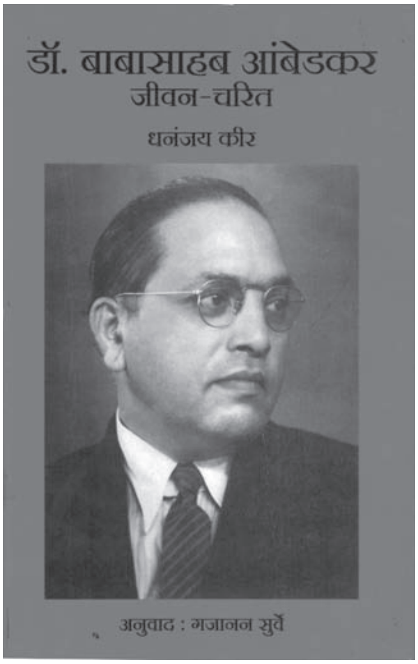

दूसरे दिन उसी मंडप में आयोजित किसानों की परिषद् का अध्यक्षस्थान आंबेडकर ने ही विभूषित किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा, 'मेरा जन्म सर्वसाधारण जनता की जिम्मेदारी लेने के लिए हुआ होगा। मैं एक गरीब परिवार में पैदा हुआ और बम्बई के 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट चाल' में गरीब लोगों में ही बड़ा हुआ। मुझे आपकी शिकायतें मालूम हैं। खोती आपके खून का शोषण कर रही है। यह खोती की पद्धति विनष्ट की जानी चाहिए। ऐसा होने पर आपको शांति और समृद्धि प्राप्त होगी। अपना ध्येय प्राप्त करने के लिए यह आंदोलन आपको इसी तरह आगे चालू रखना चाहिए। चार-पांच वर्षो बाद भारत के हाथ में अपनी भवितव्यता के सभी सूत्र आने की संभावना है। उस समय आप अपने सच्चे प्रतिनिधि विधानसभा में भेजने की सावधानी बरतें। आप ऐसे ही उम्मीदवारों का चुनाव करें, जो खोती पद्धति का निर्मूलन करने के लिए निष्ठा से कार्य करेंगे।"

चिपलून से बम्बई वापस लौटने पर मिल मजदूर यूनियन द्वारा शुरू की गई कपड़ा मिलों की हड़ताल के खिलाफ अपने आंदोलन को आंबेडकर ने फिर से गति प्रदान की। पहली हड़ताल के समय मिली विफलता की परवान करते हुए मजदूर नेताओं के बाएं गुट ने मजदूरों को 26 अप्रैल 1929 को हड़ताल पर जाने का आदेश दिया था। पहलें की हड़ताल में शरीक हुए कुछ मजदूरों को कार्य से हटा दिया गया था। यही इस असंतोष का कारण था। आंबेडकर को यह पूरी तरह से स्वीकार था कि हड़ताल पर जाने का मजदूरों के हित के लिए। उनका कहना था कि, कम्यूनिस्ट नेताओं के राजनीतिक उद्देश्य के लिए उसका इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए अपने अंगभूत, वैशिष्ट्यपूर्ण धीरज से उन्होंने कम्यूनिस्टों के गारे में अपना मत बारबार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि कम्युनिस्टों का मजदूर आंदोलन यथार्थ में मजदूर आंदोलन नहीं, श्रमिकों के कल्याण की अपेक्षा राज्यक्रांति के उद्देश्य से ही वह आंदोलन अधिक प्रेरित हुआ है। 'मुंह में राम बगल में छुरी' - की कम्यूनिस्ट कार्यपद्धति को वे बहुत अच्छी तरह से जानते थे।

दलित वर्गीय श्रमिकों को उनकी अस्पृश्यता की वजह से मिलों में विशेष लाभदायी विभागों में काम करने के लिए बंदी थी। इस वजह से कम्युनिस्ट नेताओं की प्रेरणा से शुरू हुई हड़ताल का आंबेडकर पहले की अपेक्षा अधिक जोश विरोध करने लगे। आंबेडकर इस हड़ताल के लिए अनुकूल न होने के दूसरा एक कारण यह था कि पिछले साल की हड़ताल से दलित वर्ग के श्रमिकों की स्थिति इतनी नीचे गिर गई थी कि, पठान के कर्ज की वजह से उनके गर्दन के इर्द-गिर्द कर्ज के अधिकाधिक पास जकड़े जा रहे थे। उनकी इज्जत पर हमला हो गया था। अपनी परिस्थिति में सुधार होने की दृष्टि से हड़ताल का आश्रय लेना यद्यपि उचित था, तो भी इस तरह का परिवर्तन लाने के लिए श्रमिकों की स्थिति को ज्यादा न बिगाड़ हुए परिवर्तन लाने की जरूरत है। उन्होंने यह कहा कि रोकी तबीयत अधिक न बिगाड़ते हुए रोग का इलाज कर लेना चाहिए।[1]

आंबेडकर ने रघुनाथराव बखले और शामराव परूलेकर इन दो श्रमिक नेताओं के साथ मिल मजदूर यूनियन के प्रचार को हटाने के लिए बड़े आवेश के साथ प्रयास और प्रचार किया। 29 अप्रैल 1929 को बम्बई के दामोदर सभागृह में मिल मजदूरों की एक सभा आयोजित की गई। आंबेडकर ने ही अध्यक्षस्थान विभूषित किया। उस सभा में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि हड़ताल पर जाना उचित नहीं।

हड़ताल के बारे में यह वाद-विवाद चल ही रहा था कि आंबेडकर ने नासिक जिले के चितेगांवा में सम्मपन्न हुई विराट परिषद् में भाषण किया। उस भाषण में उन्होंने कहा, 'मनुष्य का स्वाभिमान बनाए रखने के लिए शिक्षा ही एकमात्र माध्यम नहीं। शिक्षा से अगर इन्सानियत

मिलती, तो सुशिक्षित और अधिकारी वर्ग द्वारा हम पर अन्याय न होता। इन्सानियत के लिए अंत तक संघर्ष करो। अपने ध्येय और मार्ग की रुकावटों को स्वयं ही दूर कर अपने पर लगा हुआ कलंक अपने आप ही धो डालो।' इस तरह उन्होंने अपने प्रतिनिधियों को बड़ी आस्था से आवाहन किया।

एक और महत्वपूर्ण परिषद् अम्बेडकर के मार्गदर्शन की पातुर्ड़ा में प्रतीक्षा कर रही थी। मध्यप्रान्त और वराड़ प्रान्त के दलित वर्ग ने 29 मई 1929 को वह परिषद् आयोजित की थी। उस समय अम्बेडकर हड़ताल के काम में बहुत व्यस्त थे। उनकी बहन तुलसाबाई धर्माजी कांतेकर हाल में ही चल बसी थी। विद्यार्थी-जीवन में अम्बेडकर उस बहन के यहां रहते थे। उसके पति बी.बी.सी. आई. परेल के रेल कारखाने में पहरेदार थे। फिर भी परिषद् का अध्यक्ष-पद स्वीकारने के लिए उन्होंने बड़ी मुश्किल से समय निकाला। उस परिषद् में वह प्रस्ताव पारित किया गया कि अगर स्पृश्य हिन्दुओं ने अस्पृश्यों की स्थिति के बारे में उदासीनता इसी तरह चालू रखी, तो अस्पृश्य धर्मांतरण कर किसी भी अन्य धर्म का स्वीकार करे। हड़ताल की परिस्थिति से अम्बेडकर को जल्दी बम्बई आना बहुत जरूरी था। इसलिए वे सीधे बम्बई लौटे।

एक और महत्वपूर्ण परिषद् अम्बेडकर के मार्गदर्शन की पातुर्ड़ा में प्रतीक्षा कर रही थी। मध्यप्रान्त और वराड़ प्रान्त के दलित वर्ग ने 29 मई 1929 को वह परिषद् आयोजित की थी। उस समय अम्बेडकर हड़ताल के काम में बहुत व्यस्त थे। उनकी बहन तुलसाबाई धर्माजी कांतेकर हाल में ही चल बसी थी। विद्यार्थी-जीवन में अम्बेडकर उस बहन के यहां रहते थे। उसके पति बी.बी.सी.आई. परेल के रेल कारखाने में पहरेदार थे। फिर भी परिषद् का अध्यक्ष-पद स्वीकारने के लिए उन्होंने बड़ी मुश्किल से समय निकाला।

इसके कुछ दिन पहले अम्बेडकर जब जलगांव गये थे, तब उन्होंने अस्पृश्य वर्गियों को साफ सलाह दी थी कि, ''धर्मांतरण किये बिना अस्पृश्यता का निर्मूलन होना कठिन है। उस मार्ग से जाने के लिए तो सहनशीलता चाहिए वह जिनमें होगी उनके धर्मांतरण करने के खिलाफ में नहीं हूं।'' तद्नुसार जलगांव के अस्पृश्य लोगों में से कुछ लोगों ने जलगांव के स्पृश्य हिन्दुओं को पूर्व सूचना दी कि अगर निर्धारित अवधि के अन्दर वे अस्पृश्यों को योग्य अधिकार देकर उनकी यातनाओं को दूर नहीं करेंगे तो अस्पृश्य अन्य धर्म में प्रवेश करेंगे।

जनमत को आजमाने के लिए अम्बेडकर ने जलगांव और पातुर्ड़ा में धर्मांतरण की समिति घोषणा करके हिन्दुओं के मन की थाह लेने का प्रयास किया। लेकिन अम्बेडकर को भला-बुरा कहने वाले स्पृश्य हिन्दू कार्यकर्ताओं का हृदय द्रवित नहीं हुआ। उन्होंने इस घोषण ा को तनिक भी महत्व नहीं दिया। उन्हें ऐसा लगा कि, स्पृश्य हिन्दुओं की भावना को हिलाकर अधिक नागरिक अधिकार प्राप्त कर लेने की यह ऊटपटांग तरकीब होगी। तथापि निर्धारित अवधि टल गयी और 4 जून 1929 को जलगांव के लगभग 12 महारों ने सचमुच मुसलमान धर्म की दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् सनातनी सुधारकों की आंखे खुल गई। वे घबड़ा गये। थोड़ी देर क्यों न हुई हो, परन्तु उनके मस्तिष्क में उस विदारक परिस्थिति की वजह से प्रकाश पड़ गया। विचारचक्र शुरू हुआ। 'महार मरा और अशौच टला' इस प्रकार जिनकी भावना थी, उन्होंने भावनावश होकर बिना हिचकिचाहट तुरन्त दो कुएं अस्पृश्य समाज के लिए खोल दिये। अम्बेडकर के मतानुसार यह उपाय 'अब पछताये क्या होता है, जब चिड़िया चुग गई खेत' जैसा ही थी। उनकी वह कृति तहेदिल से नहीं थी। इसलिए स्पृश्य हिन्दुओं को उसमें खास डींग हांकने की कोई बात नहीं थी। हिन्दू समाज को अगर न्याय, समता और इन्सानियत की परवाह होती तो वे इन बातों को इस स्तर तक नहीं आने देते। मुसलमान और ईसाई धर्मो के एहसान ही मानने चाहिए। ये धर्म हिन्दुस्तान में न होते तो अस्पृश्यों की क्या दशा हुई होती? कितना छल उन्हें सहना पड़ता इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती' ऐसे उद्‌गार उन्होंने निकाले।

इन परिषदों के कारण अम्बेडकर के आंदोलन को तीव्र गति प्राप्त हुई। अपने लिये हुए कौल करार के अनुसार आचार न करने वाले अपने भाइयों पर कड़ा बहिष्कार डालने का अस्पृश्य समाज के लोगों ने संकल्प किया। मृत जानवरों की लाशें ढोने के काम को अब अस्पृश्य लोग नकारने लगे। ऐसे में उन्होंने यज्ञोपवीत भी धारण किये थे; फिर क्या पूछना? स्पृश्य लोग उनका बहुत छल करते थे। उनकी शिकायतें और दु:ख का छोर नहीं रहा। इसलिए बोले की अध्यक्षता में आयोजित एक प्रचंड सभा में बाबासाहेब अम्बेडकर ने उन छल करने वाले लोगों को एक कड़ी डॉट पिलाई।

सितम्बर 1927 से अम्बेडकर द्वारा

अपने दोस्तों के साथ चलाये 'समाज समता संघ' के कार्य संबंधी वाद की बहुत मिट्टी पलीद हो गयी थी। इस संस्था के अध्यक्ष स्वयं बाबासाहेब थे। कार्यकारिणी समिति के सदस्यों और पदाधिकारियों में दे.वि. नाईक, डॉ. भाईंदरकर, भा.वि. प्रधान, द.वि. प्रधान, रा.दा. कवली, एस.एस. गुप्ते आदि लोग प्रमुख थे। सब लोग समान होते हैं। मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक साधनों और अवसरों पर प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है। यह समानता का अधिकार पवित्र, परादेय और अबाधित है, यह संघ का ध्येय था। संस्था के इस व्यापक और क्रांतिकारी उद्देश्यों के कारण जिनके दिल अस्वस्थ हुए थे, उन लोगों ने संस्था की कटु आलोचना की। इस आलोचना का अम्बेडकर ने जो सविस्तार उतर दिया उसमें वे कहते हैं कि, ''अगर कोई व्यक्ति अपनी उक्ति के अनुसार कृति करता है, उसी तरह बर्ताव करता हो, तो उसे पूजनीय ही मानना चाहिए। तथापि कोई अच्छा तत्व स्वीकार करने पर भी उस तत्व के अनुसार आचार करने का धैर्य अगर कुछ व्यक्तियों में नहीं है, तो उसकी वजह से उस तत्व की सच्चाई को बाधा नहीं आती।'' कुछ आक्षेपकर्ताओं का कहना था कि, समूचे विश्व से सामाजिक विषमता पूरी तरह से नष्ट कभी भी नहीं होगी। उन्हें अम्बेडकर ने उल्टे प्रश्न किया कि, 'सभी देशों में, सभी कालों में समाज में अनीति होती है, यह मालूम होते हुए भी आप नीति का प्रचार क्यों करते हैं?' उनका यह अटल विश्वास था कि सामाजिक समता का तत्व समाज की स्थिरता के लिए कोनशिला की तरह महत्वपूर्ण है। नीति की मजबूत नींव पर समाज का निर्माण करना है, तो समाज के प्रत्येक घटक को धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में समता का तत्व जारी करना जरूरी है।

'समाज समता संघ' के अध्यक्ष और नेता के रूप में अम्बेडकर ने आचार्य प्रह्लाद केशव अन्ने के विवाह का 'बहिष्कृत भारत' में लेख लिखकर अभिनंदन किया। ''अत्रे, देशस्थ ब्राह्मण और उनकी पत्नी गोदूताई शामराव मुंगी, वैश्य! कवि केशनकुमर नाम से वे साहित्य भक्तों को परिचित है। उनका ऐसा लौकिक है कि उपहासात्मक काव्य लिखने में उनका सानी कोई अन्य मराठी कवि नहीं है। वर-वधु के स्वतंत्र व स्वावलंबी होने के कारण यह मिश्र विवाह हर दृष्टि से उचित और आदर्श माना जाना चाहिए।''

रत्नागिरी के जिला और सत्र न्यायालय में चल रहे हत्या के एक मुकदमे में निमित्त अम्बेडकर को वहां सितम्बर 1929 में जाना पड़ा। इस मौके का लाभ उठाते हुए वीर सावरकर ने रत्नागिरि के विठ्ठल मंदिर में अम्बेडकर भाषण करें, इसलिए नागरिकों के सैकड़ों हस्ताक्षरों सहित एक आमंत्रण उन्हें भेज दिया। सावरकर के अनुयायियों ने इसी विठ्ठल मंदिर में सामाजिक सुधार का सफलता के साथ संघर्ष किया था। इसलिए उस मंदिर को सामाजिक क्रांति संघर्ष के एक बड़े केंद्र के रूप में विशेष महत्व प्राप्त हुआ था। प्रतिक्रियावादी लोग सभाबंदी आदेश प्राप्त करने के लिए नगर दण्डाधिकारी के पास पहुंचे। सारे शहर में इस प्रश्न पर चर्चा शुरू हुई, तथापित बीच में अम्बेडकर को बम्बई के किसी अत्यंत जरूरी काम के लिए तार प्राप्त होने से भारत-भू के दो महान क्रांतिवीरों के एक ही व्यासपीठ पर अचूक और अमूल्य भाषण सुनने के लिए सहज ही प्राप्त हुए मौके से रत्नागिरि की जनता वंचित हुई।

इस साल भी अम्बेडकर ने सार्वजनिक जगह पर अस्पृश्यों का गणेश-मूर्ति-पूजन का अधिकार जताने के लिए फिर से संघर्ष शुरू किया। दादर गणेशोत्सव के अध्यक्षों ने सोशल सर्विस लीग को बताया कि हमने पिछले साल जो निर्णय लिया था उसके रद्द होने से किसी भी अस्पमृश्य व्यक्ति की मूर्ति की प्रतिष्ठापना की जगह प्रत्यक्ष कमरे में या कमरे के पास आने के लिए इजाजत नहीं दी जायेगी। उत्सव-चालकों की इस कलाबाजी से गणेश-चतुर्थी के दिन वातावरण बड़ा तंग हो गया था। उत्सव के चालकों ने अत्यंत सावधानी बरती थी। पुलिस भी बुलायी गयी थी। मंडप में जगह-जगह पर गुंडे खड़े किये। लगभग 1000 अस्पृश्य हिन्दू मंडल के बाहर इकट्ठा होकर अंदर प्रवेश करने के लिए इजाजत मांगने लगे। अम्बेडकर, बोल, प्रबोधनकार केशवराव ठाकरे और अन्य स्थानीय नेता उस जगह इकट्ठा हुए। उस प्रचंड जनसमुदाय में शांति रखने के लिए अम्बेडकर को काफी कष्ट उठाने पड़े। सनातनी हिन्दुओं के एक मुखिया डॉ. जावले से चर्चा शुरू की। अम्बेडकर ने अस्पृश्यों को केवल मानवी अधिकार प्राप्त हो इसलिए अनुरोध किया। इस चर्चा के विफल होने के लक्षण दिखाई देने लगे। परिस्थिति अधिक विस्फोटक बन गई। जनसमुदाय का रेला हर क्षण आगे सरक रहा है, यह जब सनातनी नेताओं के ध्यान में आया, तब आखिर उन्होंने हाथ जोड़ लिए। दोपहर तीन बजे उन्होंने अपने निर्णय में अनुकूल परिवर्तन किया। इसी के साथ अस्पृश्य हिन्दुओं ने विजयोतसव के साथ मंडल में प्रवेश किया।

इस समय बाबासाहेब ने कोल्हापुर के वकालत की सनद फिर से निकाली। महत्वपूर्ण मुकदमे चलाने का काम उनके स्नेही दत्तोबा पवार दिला देते थे। इसलिए दत्तोबा को बाबासाहेब अम्बेडकर से हमेशा अनुस्मारक भेजे जाते थे। कठिनाई के समय धन और दुःख के समय मन को धीरज देने वाला दत्तोबा जैसा जिगरी दोस्त उस समय बाबासाहेब को शायद ही मिला होगा।

उसी समय बम्बई सरकार द्वारा नियुक्त की गई स्टार्ट कमेटी के कार्य में अम्बेडकर व्यस्त थे। उस समिति की नियुक्ति अम्बेडकर के निष्ठावान सहयोगी डॉ. सोलंकी के प्रस्ताव के अनुसार हुई

थी। बम्बई प्रान्त के अस्पृश्यों और आदिवासी जमात की शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति की पूछताछ करके उसमें सुधार की क्या उपाय-योजना की जाए, यही उसका उद्‌देश्य था। उस समिति के अध्यक्ष ओ.बी.एच. स्टार्ट, आई.सी.एस. व्यक्ति थे। अम्बेडकर और डॉ. सोलंकी के बाद गांधी भक्त ए.एच. ठक्कर भी उस समिति के सदस्य थे। समिति के सदस्य के रूप में अम्बेडकर ने बेलगांव, नासिक, खानदेश जिलों के अनेक देहातों से भेंट की। समिति के सदस्य होने पर भी अम्बेडकर को इस भेंट में अपमानजनक बर्ताव महसूस हुआ। एक प्राथमिक स्कूल के मुख्याध्यापक ने तो उन्हें कक्षा में पैर भी रखने नहीं दिया। वह घटना इस प्रकार है-एक पालक ने शिकायत की थी कि, उसके लड़के को कक्षा में बैठने नहीं दिया जाता; बल्कि बरामदे में बिठाया जाता है। अम्बेडकर ने इस पर प्रत्यक्ष पूछताछ करने के लिए उस स्कूल में भेंट की थी।

दूसरी ऐसी घटना तब हुई जब समिति के सभासदों ने पूर्व खानदेश का दौरा किया। चालीस गांव के अस्पृश्यों ने अम्बेडकर का उत्साह के साथ स्वागत किया। उनके मन में अम्बेडकर को अपनी बस्ती में ले जाने का विचार था। लेकिन तमात हिन्दू तांगे वालों ने अस्पृश्यों के नेता को तांगे से ले जाने से इनकार कर दिया। आखिर में समझौते के रूप में एक अस्पृश्य ने तांगा हांकना तय किया। लेकिन उसे पूरे जीवन में तांगा हांकने का अनुभव न होने से घोड़ा बिदक गया। साथ ही अम्बेडकर तांगे से बाहर फेंके गये और पत्थर की सीढ़ियों पर घायल होकर गिर गये।

इस घटना के संबंध में एक महीना बाद उन्होंने लिखा[2] कि, ''23 अक्तूबर 1929 को मैं जिस तांगे से सफर कर रहा था, वह उलट गया और मैं बाहर फेंका गया। इस दुर्घटना के कारण मेरे दाएं पैर की हड्डी टूट गयी। इस अस्थिभंग का परिणाम यह हुआ कि मुझे दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह तक बिछौने पर ही रहना पड़ा और आज यद्यपि मैं थोड़ा-बहुत चलता-फिरता हूं, फिर भी लाठी के सहारे के बिना नहीं चल सकता।''

स्टार्ट समिति ने आगे मार्च 1930 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उसमें कहा गया है कि, 'यद्यपि अस्पृश्य जनता हिन्दुओं के ही धर्मकृत्य, कानून और त्यौहार मनाती और स्वीकारती है, फिर भी उसे बहिष्कृत स्थिति में दूर अलग रहना पड़ता है। प्रतिरोध के कारण वह समाज में सम्मिलित नहीं हो पाती; इसलिए वह दासता की बुरी हालत में फंसी है।' अपना यह अभिप्राय देकर समिति ने कुछ सूचनाएं दी'। स्पृश्य हिन्दुओं के स्कूलों में अस्पृश्यों की शिक्षा अधिक अच्छी तरह से करवाने की व्यवस्था की जाए; अस्पृश्य छात्रों के लिए निर्धारित आवासों और छात्रवृत्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी की जाए। मिलों और रेल-कारखानों में औद्योगिक शिक्षा लेने के लिए काम सीखने के लिए काम सीखने के इच्छुक छात्र लेने और विदेश से यांत्रिक शिक्षा लेने के लिए अस्पृश्य छात्रों को छात्रवृत्ति देने का इंतजाम हो। यह सारा इंतजाम देखने के लिए एक स्वतंत्र अधिकारी की नियुक्ति की जाए।

देहातो कीसरकार प्रणाली पर चलने वाली संस्थाओं में अस्पृश्यों को उचित मात्रा में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। नगरपालिका के सफाई कामगारों को 'साहूकारों का कानून और भविष्य निर्वाह निधि' लागू कर सुरक्षा दी जाए। पुलिस और लशकर विभाग में दलित वर्ग के लोगों की भर्ती की जाए। उनके लिए नगर में रहने की सुविधा की जाए। जंगल

स्टार्ट समिति ने आगे मार्च 1930 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उसमें कहा गया है कि, 'यद्यपि अस्पृश्य जनता हिन्दुओं के ही धर्मकृत्य, कानून और त्यौहार मनाती और स्वीकारती है, फिर भी उसे बहिष्कृत स्थिति में दूर अलग रहना पड़ता है। प्रतिरोध के कारण वह समाज में सम्मिलित नहीं हो पाती; इसलिए वह दासता की बुरी हालत में फंसी है।' अपना यह अभिप्राय देकर समिति ने कुछ सूचनाएं दी'। स्पृश्य हिन्दुओं के स्कूलों में अस्पृश्यों की शिक्षा अधिक अच्छी तरह से करवाने की व्यवस्था की जाए; अस्पृश्य छात्रों के लिए निर्धारित आवासों और छात्रवृत्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी की जाए। मिलों और रेल-कारखानों में औद्योगिक शिक्षा लेने के लिए काम सीखने के लिए काम सीखने के इच्छुक छात्र लेने और विदेश से यांत्रिक शिक्षा लेने के लिए अस्पृश्य छात्रों को छात्रवृत्ति देने का इंतजाम हो। यह सारा इंतजाम देखने के लिए एक स्वतंत्र अधिकारी की नियुक्ति की जाए।

काटकर प्राप्त हुई भूमि और ऊसर भूमि दलितवर्गियों को दी जाए। सक्कर बांध योजना का उपयोग उनके सुधार के लिए किया जाए।

उपर्युक्त उल्लिखित दुर्घटना ने अम्बेडकर को घर के बाहर कार्य करने के लिए असमर्थ बना दिया था। फिर भी वे खामोश नहीं बैठे थे। अदम्य उत्साह शक्ति, बड़प्पन का एक महत्वपूर्ण अंग होती है। भिक्षुकशाही और पुरोहित वर्ग के उच्चाटन के लिए उन्होंने एक तेजस्वी लेख लिखा। एक पारसी व्यक्ति ने अक्तूबर 1929 में बम्बई के 'बॉम्बे क्रॉनिकल' पत्र में पारसी पुरोहित वर्ग के खिलाफ अत्यंत तीखे शब्दों में लेख लिखा था। पुरोहित वर्ग की एक ऐसी जाति बन गई है और उसे विनष्ट करने के मुख्य उद्दिष्ट वाले एखाद मंडल की कितनी आवश्यकता है, इस पर उस लेखक ने जोर दिया था। उस विचार का समर्थन करने के लिए 'बॉम्बे क्रॉनिकल' पत्र में 'पुरोहित वर्ग व्यवसाय विरोधी मंडल चाहिए।' इस शीर्षक से उन्होंने एक ज्वलंत लेख लिखा।[3] उस लेख में अम्बेडकर कहते हैं कि हिन्दू पुरोहित वर्ग सर्वसाधारण पारसी पुरोहित वर्ग की अपेक्षा शैक्षिक, नैतिक या अन्य क्षेत्र में किसी भी तरह से आगे नहीं है। ऐसा होते हुए भी वंशपरंपरा से जिन्हें उपाध्याय उपाधि प्राप्त हुई है, उन हिन्दू पुरोहितों के खिलाफ़ आरोप करने है तो वे अनगिनत और उतने ही भयंकर है। यह वर्ग संस्कृति के चक्र की गति बंद करने वाली रुकावट ही है। मनुष्य पैदा होता है, अपने परिवार का पालन पोषण करता है और कालान्तर में चल बसता है; लेकिन प्रारंभ में अन्त तक उसकी गर्दन पर पुरोहित की छाया किसी पिशाच की भांति पड़ी होती है।'' भिक्षुकशाही यानी इन्सानियत का हीन नमूना—यह वर्णन करके अम्बेडकर आगे लिखते हैं कि, 'अज्ञात शक्ति और असहाय मानव के बीच मध्यस्थ की भूमिका की ढोंगबाजी कर उस पर भिक्षुक अपनी आजीविका चलाता है। विवाह जैसी कोई आनंदप्रद घटना हो अथवा मृत्यु जैसी दु:खद घटना; उपाध्याय वर्ग दोनों से अपना समान लाभ करवा लेता है। एक पारसी पत्रकार ने मार्मिकता से कहा है कि अपने भक्ष्य पर उदर-निर्वाह करने के लिए उनमें से अनेक प्रार्थना करते है।' किसी गरीब परिवार का कोई मृत पारसी, जिन्दा पारसी की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से दु:सह होता है; उस पारसी लेखक का यह विधान अम्बेडकर ने अपने लेख में उद्धृत किया। अपने लेख के अन्त में उन्होंने प्रबुद्ध हिन्दू, मुसलमान और ईसाई लोगों का बड़ी आत्मीयता से आवाहन किया। उसमें उन्होंने कहा, ''पुरोहित वर्ग की मजबूत पकड़ से भारत की मुक्ति करने के लिए कुछ उपाय योजना बनाकर पुरोहित वर्ग को शुद्ध करने के उस उदात्त और धैर्यशाली कठिन कार्य में वे मदद करेंगे, ऐसी आशा है। क्योंकि अगर पारसी बन्धुओं को उनके पुरोहित वर्ग का बोझ दु:सह हुआ है, तो अन्य समाज में भी अपने पुरोहित वर्ग का बोझ सहने की शक्ति निश्चय ही नहीं रही है।'' उसी समय शिवराम जानबा कांबले, पां.ना. राजभोज, श्री स. थोरात, लांडगे, विनायकराव भुस्कुटे आदि पुणे के दलित वर्ग के नेताओं नेपुणे के वा.वि. साठे, देशदास रानडे, ग.ना. कानिटकर, केशवराव जेधे और न.वि. गाडगिल इन स्पृश्य नेताओं के साथ विचार विमर्श कर पुणे के प्रसिद्ध पर्वती के मंदिर के देवता की पूजा अर्चना करने का अस्पृश्यों का अधिकार प्रस्थापित करने के लिए 13 अक्तूबर 1929 को सत्याग्रह शुरू किया। मंदिर प्रवेश आन्दोलन के विरोधियों ने भयप्रद गर्जना कर सत्याग्रहियों पर पथराव किया। इस पत्थरबाजी से गाडगिल, रानडे और कुछ आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं को मामूली जख्त हुए। राजभोज को तो भयंकर चोट लगने से अस्पताल में लाना पड़ा। लशकरी पलटन आ गयी। लोग तितर-बितर हो गये। बड़ी मात्रा में होने वाला रक्तपात टल गया।

सत्याग्रहियों क बारे में सनातनी हिन्दुओं ने जो अश्लाघ्य बर्ताव किया, उसके खिलाफ अनेक सभाओं में अनेक जगह कड़े विरोध व्यक्त किये गये। अम्बेडकर स्टार्ट समिति के कार्य में व्यस्त थे। इसके अतिरिक्त मंदिर-प्रवेश आन्दोलन का नेतृत्व स्पृश्य हिन्दू नेताओं के पास होने से वे उस सत्याग्रह से थोड़े अलिप्त रह होंगे। फिर भी बम्बई की एक सभा में किये हुए अपने खलबली पैदा करने वाले भाषण में उन्होंने कहा, ''पुण े के दलित वर्ग द्वारा अपने मूलभूत मानवी अधिकार प्राप्त करने के लिए चलाये संघर्ष को केवल हार्दिक समर्थना देना ही बम्बई के दलित वर्ग का कर्तव्य नहीं, उन्हें आर्थिक सहायता देनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर सत्याग्रह का समर्थन करने के लिए पुणे जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। कुछ समय तक रुको और स्पृश्यों का हृदय-परिवर्तन होने की बाटर जोहो। ऐसी विनती करने वाले लोगों की मनावृत्ति की कड़ी आलोचना किये बिना मैं नहीं रह सकता।'' उस समय कांग्रेस ने (राष्ट्रीय सभा ने) ब्रिटिश संसद की विशिष्ट समय-सीमा यानी 31 दिसम्बर 1929 तक साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य देने के बारे में- आखिरी शर्त रखी थी। उसका उल्लेख करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने स्पृश्य हिन्दुओं को ताना देने की दृष्टि से कहा, ''तो फिर केवल पूजास्थान में प्रवेश करने के सीधे इन्सानियत के अधिकार प्राप्त करने के लिए, दलित-वर्गियों को अधिक समय तक इंतजार करने को बताने में उनकी चालबाजी होकर दिखावटी मुलम्मा है।'' अपने भाषण का समापन करते समय उन्होंने कहा, ''हम भी इस तरह का आन्दोलन बम्बई में शुरू करें और समता संघ के अध्यक्ष के नाते आंदोलन को अन्त में सफल बनाने के लिए मैं प्रयास करूंगा। इस सभा में प्रबोधनकार ठाकरे, देवराव नाईक, शिवतरकर, प्रधान, खाड़के, कवली, कद्रेकर, इत्यादि नेता और कार्यकर्ता उपस्थित थे। पुणे का

मंदिर प्रवेश सत्याग्रह उस तरह का पहला ही सत्याग्रह नहीं था। सावरकर ने रत्नागिरि के विठ्ठल मंदिर में अस्पृश्य हिन्दुओं को प्रवेश दिलाने के उद्देश्य से इसी तरह का आन्दोलन शुरू किया था। कारवार का विठ्ठल मंदिर-प्रवेश, अमरावती का अंबादेवी मंदिर प्रवेश, खुलना का कपिलमुनि काली मंदिर-प्रवेश इत्यादि अनेक जगह संघर्ष चालू थे। यह सच है कि पुणे का सत्याग्रह शुरू तो हुआ; लेकिन सनातनियों द्वारा मंदिर बंद रखने से उसे पीछे हटाना पड़ा। तथापि इस मुद्दे पर आगे संघर्ष करने की कल्पना अम्बेडकर के हृदय से विनष्ठ नहीं हुई।

संदर्भ

1. बहिष्कृत भारत, 31 मई, 1929
2. Ambedkar's letter dated 8 December 1929 to the Director of Public Instruction.
3. The Bombay Chronicld, 8 November 1929.

अध्याय 9

अस्पृश्यों का दु:ख विश्व में जाहिर किया

भारत के इतिहास में सन् 1930 साल नवविचार और नवतेज, पराक्रम और प्रतिकार का माना जाता है। इसी साल 12 मार्च को कांग्रेस के सर्वाधिकारी महात्मा गांधी ने डांडी मार्च से भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर्व शुरू किया। हजारों नि:शस्त्र भारतीय वीरों ने सशस्त्र ब्रिटिश घुड़सवारों, गोलाबारी और कारावास का धैर्य से मुकाबला किया। फिर एक बार सारा भारत स्वतंत्रता की घोषणाओं से गूंज उठा।

2 मार्च 1930 को आंबेडकर ने दलित हिन्दुओं की सामाजिक स्वतंत्रता के लिए नासिक में मंदिर प्रवेश का संघर्ष शुरू किया। यद्यपि डॉ॰ बाबासाहब आंबेडकर ने घोषित किया था कि हम बम्बई में मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह करेंगे, फिर भी उन्होंने वह विचार स्थगित किया और महाराष्ट्र के स्पृश्य हिन्दुओं की नाक, नासिक को ही दबाने का संकल्प किया। राष्ट्रीय सभा का संघर्ष जुल्मी और अर्थशोषण कर जनता को चूसने वाली अन्यायी विदेशी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ था; तो आंबेडकर का संघर्ष मानवता को कंलक लगाने वाली अमानुष, अन्यायी और अघोर स्वदेशी सनातनी ब्राह्मणी सत्ता के खिलाफ था। एक तानाशाही, तो दूसरी धर्ममार्तंडशाही सामाजिकशाही! एक राजनीतिक गुलामी, तो दूसरी सामाजिक गुलामी। नासिक के पंचावटी के कालाराम मंदिर के व्यवस्थाकों को वहां के स्थानीय सत्याग्रह समिति ने विधिवत् लिखित सूचना दी थी कि, विशिष्ट समय-सीमा तक अस्पृश्य गिने हुए हिन्दुओं के लिए राममंदिर खोला न गया, तो मंदिर प्रवेश के लिए हम सत्याग्रह करने वाले हैं। महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात के लगभग 15,000 सत्याग्रही अपने नेता की पुकार को 'हां' देकर जमा हुए। समाज समता संघ के नेता देवराव नाईक, द.वि.प्रधान, कवली, सहस्रबुद्धे भी नासिक गए। बालासाहब खेर भी सत्याग्रही और सनातनी हिन्दुओं में कुछ समझौता करने की दृष्टि से नासिक गए थे। अस्पृश्यों के नेता पांडुरंग न. राजभोज, सीतारामपंत, भाऊराव गायकवाड़, अमृतराव रणखांबे - ये प्रमुख नेता थे; सावलारात दाणी, पांडुरंग सबनिस, तुलसीराम काले, नानाशेट मेस्री आदि नेता वा कर्याकर्ता बड़े उत्साह के साथ सत्याग्रही समिति का कामकाज देख रहे थे। सत्याग्रह के प्रवर्त, प्रचारक और कार्यकर्ता लगभग सभी अस्पृश्य वर्ग के थे। महाड़ के संघर्ष के बाद हुआ यह परिवर्तन साफ दिखाई देता है। स्पृश्य हिन्दुओं की इच्छा, तंत्र और मार्ग से चले रहे अस्पृश्यों के आंदोलन को अब भाटा लग गया था। इससे पहले अस्पृश्यता निवारण संबंधी जो सभा-सम्मेलन होते थे, उन सभा-सम्मेलनों में वक्ता, प्राय: सर्व श्रोता, अध्यक्ष और कार्यवाहक स्पृश्य हिन्दू होते थे। इस तरह के सभा-सम्मेलन भी अब दिखने बंद हो गए।

रविवार तारीख 2 मार्च की सत्याग्रह का क्रांतिदिन उदित हुआ। एक बड़े विस्तृत शिविर में उसी दिन दस बजे आंबेडकर की अध्यक्षता में शानदार परिषद् संपन्न हुई। उसमें सत्याग्रह की कार्यपद्धति के बारे मं विचार-विमर्श हुआ। उसी शिविर में फिर डेढ़ बजे परिषद् का कामकाज शुरू हुआ। पूर्वनियोजन के अनुसार तीन बजे एक मील लंबा, लगभग 15,000 सत्याग्रहियों का जुलूस रमा मंदिर की ओर अत्यंत शान्ति और अनुशासन से निकला। नासिक के इतिहास का वह एक अभूतपूर्व जुलूस था। उसकी अगाड़ी गोदावरी पुल पर, तो पिछाड़ी देवलाली नाके पर थी। अग्रभाग में लशकरी दर्जे का बैंड, बांसुरी, सनई, तुरही का घोष हो रहा था। वाद्यवृंद की टुकड़ी के पीछे से बालवीर पथक चल रहा था। उनके पीछे स्त्रियों का समूह गीत गाता चल रहा था।

भारत के इतिहास में सन् 1930 साल नवविचार और नवतेज, पराक्रम और प्रतिकार का माना जाता है। इसी साल 12 मार्च को कांग्रेस के सर्वाधिकारी महात्मा गांधी ने डांडी मार्च से भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर्व शुरू किया। हजारों नि:शस्त्र भारतीय वीरों ने सशस्त्र ब्रिटिश घुड़सवारों, गोलाबारी और कारावास का धैर्य से मुकाबला किया। फिर एक बार सारा भारत स्वतंत्रता की घोषणाओं से गूंज उठा।

उनके पीछे बैरागी और वारकरी 'श्रीराम जयराम जयजय राम' का इकतारे पर भजन करते चल रहे थे। जुलूस की शान्ति और सांधिक अनुशासन सराहनीय था। सत्याग्रहियों के उत्साह में बड़ा जोश था। उनके नेत्रों से संकल्प की चिनगरियां बाहर निकल रही थीं। जुलूस के राम मंदिर के नजदीक आते ही जिलाधिकारी, पुलिस प्रमुख, जिला न्यायाधीश मंदिर के दरवाजे के पास गये। मंदिर के सभी दरवाजों के बंद होने के से जुलूस गोदावरी घाट की ओर मुड़ गया। वहां जुलूस का रूपांतरण एक बड़ी सभा में होकर सत्याग्रहियों के जयघोष में वह सभा समाप्त हुई।

रात ग्यारह बजे कार्यकर्ताओं और नेताओं की एक सभा में मंदिर के सभी दरवाजों के सामने सत्याग्रह करना तय हुआ। यह ऐतिहासिक मंदिर प्रवेश सत्याग्रह 3 मार्च को सबेरे आरंभ हुआ। सत्याग्रहियों की पहली टुकड़ी मं 125 पुरूष और 25 स्त्रियां थीं। वे मंदिर के चारों दरवाजों पर पालथी मारकर बैठ गये। शिविर में 8,000 सत्याग्रही सत्याग्रह में भाग लेने के लिए बड़ी उत्सुकता से इंताजार कर रहे थें पास ही दलित वर्ग के 3,000 लोगों का जमघट वह दृश्य देख रहा था। जिलाधिकारी गार्डनसाहब और प्रथम श्रेणी के दो दंडाधिकारी वातावरण में शांति प्रस्थापित करने की दृष्टि से व्यक्तिशः देखरेख कर रहे थे। संगीनयुक्त बंदूकधारी हजारों लशकरी सिपाही मंदिर के इर्द-गिर्द वर्तुलाकार रूप में खड़े थे। सरकार ने आदेश निकाला था कि मंदिर की दीवार से 300 यार्ड अंतर के भीतर पत्थर, लाठी, लकड़ी, हथियार आदि लाना मना है। पुलिस अधीक्षक रेनॉल्डस् ने मंदिर के पास ही अपने कार्यालय का डेरा डाल दिया था। उसमें सत्याग्रहियों की ओर सहानुभूतिपूर्वक देखने वाले ल.सु. शेलके जैसे पुलिस अधिकारी थे।

अब स्पृश्य हिन्दुओं के लिए भी मंदिर के दरवाजे बंद हो गए थे। अस्पृश्य हिन्दुओं के देवदर्शन से वह देव उच्छिष्ट बनेगा, फिर धर्म डूब जाएगा; इसलिए उस श्रीराम प्रभु को ही उन्होंने बंदी बना दिया। सच कहा जाए तो स्पृश्यों में भी अब राम रह नहीं गया था। वह ब्रिटिशों के पहरे में मंदिर में ही स्थानबंदी होकर पड़ा था। इस घटना का मुकाबला कैसे किया जाए, इसके बारे में ही स्थानबंदी होकर पड़ा था। इस घटना का मुकाबला कैसे किया जाए, इसके बारे में नासिक के स्पृश्य नेता गुप्त विचार-विमर्श करने में व्यस्त हो गये थे। सत्याग्रहियों की पहली टुकड़ी सभी दरवाजों पर अड़कर बैठी थी। अगर स्पृश्य हिन्दुओं के लिए मंदिर उस दिन खुला रखा जाता तो बड़ी मुसीबत आ सकती थी।

रात शंकराचार्य डॉ॰ कुर्तकोटी की अध्यक्षता में परिस्थिति पर विचार-विमर्श करने के लिए सभा आयोजित की गई। सनातनी लोगों की भाग-दौड़ जारी थीं वे बहुत घबरा गए थे। उन्होंने सभा पत्थरबाजी की, और जूते फेंककर सभा तितर-बितर कर दीं वातावरण इतना सुलग गया था कि प्रत्यक्ष श्रीरामचंद्र ने अस्पृश्य हिन्दुओं के लिए मंदिर खोल देने के लिए कहा होता तो उसे भी सनातनियों ने झटका दिया होता। रामराज्य समाप्त होकर अनेक युग बीत चुके थे।

सत्याग्रह 1 अप्रैल तक जारी ही रहा। रामनवमी के दिन श्रीरामचंद्र का रथ बाहर निकलने वाला था। स्पृश्य हिन्दू नेताओं और सत्याग्रह के नेताओं के बीच यह समझौता हुआ कि दोनों ओर के तन्दुरूस्त लोग श्रीराम का रथ खींचे। यह रोमांचक दृश्य देखने के लिए मंदिर के पास अपार जनसमुदाय एकत्र हो गया था। आंबेडकर अपने दल के तालीमबाज, चुनिंदा लोग लेकर अपने कार्यकर्ताओं के साथ मंदिर के पास आ पहुंचे। लेकिन आंबेडकर के चुनिंदा लोगों के रथ को हाथ स्पर्श करने से पहले ही स्पृश्य हिन्दुओं ने पहले अंतस्थ तय किये अनुसार भुलावा देकर रथ दूसरी ओर अपहत किया। वह रास्ता चौड़ा नहीं था। इर्द-गिर्द कंटीली बाड़ थी। उसे संगीनधारी पुलिसों ने रोक रखा था। अस्पृश्य कार्यकार्त रथ के पीछे दौड़ने लगे। उन पर पत्थरों से उनका बचाव कर रहे थें इतने में संगीनधारी पुलिसों का घेरा तोड़कर भास्करराव कद्रेकर नामक एक भंडारी युवक अंदर घुस गया। थोड़े ही समय में वह खून से लथपथ होकर बेहोश हो गया। आंबेडकर के सहयोगियों और स्वयं आंबेडकर को भी छोटे-मोटे जख्म हो गये। इसमें राम का पक्ष कौनसा था और रावण का कौनसा, यह ज्ञानियों को बताने की जरूरत नहीं।

मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह की वजह से नासिक जिले में अस्पृश्यों को भयंकर छल सहना पड़ा। उनके लड़कों को स्कूल बंद हुए। रास्ते बुंद हुए। हर एक गांव में, बाजार में, नित्य के निर्वाह के लिए चींजे मिलनी बंद हुई। 'तुम घमंडी बन गये हो, तुम्हें बराबरी के अधिकार चाहिए न? भोगी उसके ये फल!' इस तरह की धमकी उन्हें सनातीन हिन्दू देने लगे। यह दुःख भुगतकर भी आंबेडकर ने अनुयायियों ने नासिक का सत्याग्रह जारी ही रखा। राज्यपाल फ्रेडरिक सायिक्स से आंबेडकर जाकर मिले। जिलाधिकारी द्वारा जारी की गयी संचारबंदी शिथिल करने के लिए उन्होंने राज्यपाल से विनती की। सत्याग्रह चल ही रहा था। कुछ संतप्त सत्याग्रह इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के बारे में बातें कर रहे थे; तब आंबेडकर ने उन्हें वैसा न करने का आदेश दिया। कुर्तकोटी और डॉ॰ बा.शि. मुंजे ने अस्पृश्य नेताओं को बड़ी तन्मयता के साथ यह विनती की कि, 'सनातनी हिन्दुओं का हृदय-परिवर्तन करने का हमें मौका दिया जाए।' नवकोट नारायण बिड़ला ने आंबेडकर से बम्बई में भेंट की। इन सब बातों का विचार करके नासिक के अस्पृश्य नेताओ ने सत्याग्रह स्थगित किया। डॉ॰ मुंजे आए और चले गये। कालाराम मंदिर-प्रवेश के बारे में कोई भी फैसला नहीं हो रहा था। इसलिए मंदिर-प्रवेश का संघर्ष पुनः शुरू होकर

सीधा अक्तूबर 1935 तक वैसा ही जारी रहा।

नासिक सत्याग्रह के जारी रहते अस्पृश्य नेता सायमन कमीशन के प्रतिवेदन की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतिवेदन के प्रकाशित होते ही एक अखिल भारतीय दलित परिषद् बुलाने का वे विचार कर रहे थे। तदनुसार उन्होंने नागपुर में स्वागत समिति नियुक्त कर पुणे के अस्पृश्य नेता शिवराम जानबा कांबले के साथ विचार-विमर्श कर नागपुर में परिषद् बुलाने का निश्चय किया। उस नियोजित परिषद् में आंबेडकर को अस्पृश्य वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में लंदन में होने वाली गोलमेज परिषद् के लिए भेजने वाला प्रस्ताव पारित करने का उन्होंने संकल्प किया।

सायमन कमीशन का प्रतिवेदन आखिर मई 1930 में बाहर आया। सायमन कमीशन ने भारतीय राष्ट्रवाद के ध्येय और विचार की ओर ध्यान नहीं दिया। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं की मांग का उपहास किया। उनका यह कहना था कि नेहरू समिति का प्रतिवेदन सर्वसम्मत नहीं। इस सायमन सिफारिशों के अनुसार हिन्दुओं को केन्द्रीय विधान मंडल में कुल 250 सीटों में से 150 सीटें मिलने वाली थीं। अस्पृश्य हिन्दुओं को संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में आरक्षित सीटें दी गयी थी। परन्तु अस्पृश्य वर्ग के उम्मीदवारों के चुनाव में खड़े रहने की अर्हता निश्चित करने का अधिकार राज्यपाल को दिया गया था।

महाड़ के चवदार तालाब संबंधी चल रहे दीवानी मुकदमे की सभी स्यवस्था देखना, खुद गवाही देना, गवाहों से तिनती करना, उसके लिए प्रत्यक्ष पथ-प्रदर्शन करना आदि बहुविध कार्यों में व्यस्त होने के कारण आंबेडकर को विधान परिषद् के कामकाज में नियमित रूप से विशेष ध्यान देने के लिए फुरसत नहीं थी। फरवरी-मार्च महीनों में अधिवेशन के समय सिर्फ पांच दनि ही वे उपस्थित थे। सरकारी कामकाज की पत्रिका पर उनके नाम पर माध्यमिक स्कूलों के अनुदान के बारे में प्रस्ताव था।

सायमन कमीशन का प्रतिवेदन आखिर मई 1930 में बाहर आया। सायमन कमीशन ने भारतीय राष्ट्रवाद के ध्येय और विचार की ओर ध्यान नहीं दिया। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं की मांग का उपहास किया। उनका यह कहना था कि नेहरू समिति का प्रतिवेदन सर्वसम्मत नहीं। इस सायमन सिफारिशों के अनुसार हिन्दुओं को केन्द्रीय विधान मंडल में कुल 250 सीटों में से 150 सीटें मिलने वाली थीं। अस्पृश्य हिन्दुओं को संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में आरक्षित सीटें दी गयी थी। परन्तु अस्पृश्य वर्ग के उम्मीदवारों के चुनाव में खड़े रहने की अर्हता निश्चित करने का अधिकार राज्यपाल को दिया गया था।

मई महीने के मध्य में नियुक्त पेट्रो समिति की बैठक बम्बई में हुई। उसके निमंत्रण के अनुसार आंबेडकर उस परिषद् के लिए गये थे। हिन्दू-मुसलमान समस्या और अल्पसंख्यकों की समस्या परएक मत न होने पर परिषद् किसी भी तरह का फैसला नहीं कर सकी। जुलाई-अगस्त के विधान परिषद् के अधिवेशन में कुछ दिन आंबेडकर उपस्थित थे। लेकिन विधान परिषर्द के कामकाज में उन्होंने हिससा नहीं लिया। भारतीय राष्ट्रीय सभा की मांग और उसे ब्रिटिशों द्वारा किये गये इनकार के बारे में अपनी राय अखिल भारतीय बहिष्कृत वर्ग परिषद् से पहले प्रदर्शित करना उन्होंने टाल दिया।

पहले तय किये अनुसार अखिल भारतीय बहिष्कृत वर्ग की परिषद् 8 अगस्त 1930 को नागपुर में संपन्न हुई। अध्यक्ष पदसे आंबेडकर ने कहा कि, 'विश्वयुद्ध के उपरान्त लौटविया, रूमानिया, लिथुआनिया, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, देशों में क्या परिस्थिति उत्पन्न हुई है, देखिए। यूरोप के राष्ट्रों में अलग वंशों के, अलग भाषाओं के और अलग धर्मपंथों के लोग भी स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अस्तित्त्व में रहने में कोई हर्ज नहीं। मुझे नहीं लगता कि हिन्दुस्तान की धार्मिक और सामाजिक अव्यवस्था उससे अधिक है; तथापि हिन्दुस्तान की परिस्थिति की विभिन्नता को परिलक्षित कर संविधान बनाया जाना चाहिए। जिस तरह किसी भी राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र पर राज्य करने का अधिकार नहीं; उसी तरह किसी भी एक विशिष्ट वर्ग को दूसरे वर्ग पर अधिसत्ता जताने का अधिकार नहीं। प्रत्येक व्यकित को जीवन एक बार ही व्यतीत करना है, इसलिए उसी जीवन में उसे अपनी उन्नति करने के लिए ज्यादा से ज्यादा मौका कदेकर मानवी मूल्य स्वीकार करना जरूरी है। इस तरह की श्रद्धा रखना ही आधुनिक जनतंत्र राज्यपद्धति का मूलभूत सिद्धांत है; लेकिन वरिष्ठ भारतीय वर्ग की धर्मश्रद्धा और आचार ये दोनों मूलभूत सिद्धांत के

प्रत्यक्षत: प्रतिकूल है।

'यह गलत धारणा है कि सामाजिक और राजकीय मानवी आचार दो अलग-अलग विभाग हैं और उनका एक-दूसरे पर कुछ भी असर नहीं होता। सत्ता के लिए कोलाहल कर रहा भारतीय उमरावों का वर्ग ही अस्पृश्यता का शाप जारी रखने के लिए जिम्मेदार है। इस शाप की वजह से मनुष्यता के अधिकार और सुसंस्कृतता से होने वाल लाभाओं से छह करोड़ अस्पृश्यों को वंचित किया गया है। उनकी जितनी ही संख्या वाले आदिवासियों और गिरिजनों को जंगली और विमुक्त स्थिति में रखने के लिए भी ये लोग जिम्मेदार हैं।'

जातिभेद की वजह से प्रतिष्ठित हिन्दू जुल्मियों के पास अनियंत्रित सत्ता जाने से गरीबों का कल्याण होगा या नहीं, इस संबंध में उन्होंने चिंता व्यक्त की। तथापि, बहिष्कृत हिन्दुओं को उस संविधान में विधान परिषद् में अपने प्रतिनिधि चुनने का प्रत्यक्ष अधिकार हो, इस तरह की जोरदार मांग दलित समाज करें - ऐसी उन्होंने उन्हें चेतावनी दी। औपनिवेशिक स्वराज्य के बारे में उन्होंने यह कहा कि औपनिवेशिक स्वराज्य अधिक अच्छा है; क्योंकि उसमें स्वतंत्रता का सार है। सम्पूर्ण स्वतंत्रता से आने वाला धोखा उसमें नहीं है। उन्होंने यह राय दी कि गांधीजी का डांडी-मार्च द्वारा शुरू किया गया कानूनभंग का आंदोलन अप्रासंगिक है।

'असहकारिता आंदोलन में असंख्य लोग कृति करते हैं। क्रान्ति असहकारिता के प्राण हैं और दौड़-धूप या भाग दौड़ उसकी रीति है। इस तरह की दौड़-धूप या भाग-दौड़ बड़ी मात्रा में की जाने से उसका अन्त विद्रोह में होना स्वाभाविक ही है। सिवाय क्रान्ति रक्तरंजित हो या रक्तहीन, परिणम एक ही होता है। क्रान्ति यानी परिवर्तन! क्रान्ति शुरू होने पर उसके निर्णय के बारे में पूरी अनिश्चितता ही होती है। उसके प्रवाह में गड़बड़ और धोखे का ज्यादा भय होता है। क्रान्ति अनेक बार अटल होती है। तथापि क्रान्ति और सही सामाजिक परिवर्तन में जो अन्तर है, उसे नहीं भूलना चाहिए। क्रान्ति एक दल से दूसरे दल को या एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को राजकीय सत्ता प्रदान करती है। अस्पृश्य वर्ग केवल राजनीतिक परिवर्तन पर शुष्क समाधान मानकर न रहे। राजनीतिक सत्ता का इस तरह विभाजन होना चाहिए कि समाज में सच्चा परिवर्तन होने के साथ समाज में विचरण करने वाले अन्यान्य शक्ति प्रदर्शनों में फर्क पड़े - ये विचार उन्होंने व्यक्त किये।

परन्तु नागपुर के अपने भाषण में बाबासाहब ने ब्रिटिश सरकार की हाजिरी ली या नहीं? माधवराव रानडे की भांति उन्हें ब्रिटिश सत्ता परमात्मा का वरदान लगता था। क्योंकि इस शासन सत्ता के कारण भारतीयों में स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव के बारे में विचार और तद्विषयक जाग्रति हो रही थी। इस शासन सत्ता ने भारतीय लोगों के मन में उनके सामाजिक रीतिरिवाज और नैतिक मूल्यों के बारे में घृणा निर्माण कर सामाजिक मूल्यों का मापन फिर से करने के लिए उन्हें विवश किया। इसके अतिरिक्त सबको समान न्याय पद्धति लागू कर उनके लिए एक ही पद्धति का राज्य शासन-तंत्र निर्माण किया।

ऐसा होने पर भी उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के अन्तरंग के दर्शन स्पष्ट करने के लिए आगे-पीछे नहीं देखा। उन्होंने कहा, 'स्वराज्य क्यों चाहिए इसका अन्य कोई भी कारण आपको स्वीकार नहीं है, तोभी दरिद्रता का कारण आपको स्वीकार होने लायक है। हिन्दुस्तान की दरिद्रता से तुलना करने लायक दरिद्रता विश्व के किसी भी कोने में कहीं पर भी मिलेगी क्या?' उन्होंने आगे कहा, 'ब्रिटिश सत्ता स्थिर होने के बाद से भारत में पिछली शताब्दी में कुल 31 अकाल पड़े और उनमें लगभग ढाई से तीन करोड़ लोग भूख से मारे गये। इसका कारण है हमारे देश में उद्योगधंधों और व्यापार का विकास न होने देने और हिन्दुस्तान की व्यापारी पेठ हमेशा बनी रहने देने जैसी ब्रिटिश राज्यकारोबार की बुद्धिसंगत सोच।

'यह सच है कि ब्रिटिशों ने हिन्दुस्तान को सुधारित न्यायपद्धति और सुव्यवस्था की देन दी। तथापि हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि मनुष्य जाति केवल न्याय या सुव्यवस्था पर जिन्दा नहीं रहती, वह अन्न पर जिन्दा रहती है। अपनी दीनता का अन्त ब्रिटिशों के राज्य में नहीं होगा, तो स्वराज्य के संविधान द्वारा अपने हाथ में राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने पर ही हो सकेगा। तद्नंतर ही लोगों का कल्याण करना संभव है। इसलिए अब अपने अतीतकाल की घटनाओं का विचार करके मत डरो! अपना मत तय करते समय किसी की मर्जी अथवा कृपा का विचार कर आप अपने मन पर दबाव मत रखें। अपने कल्याण की ओर ध्यान देकर स्वतंत्रता ही अपना ध्येय समझो।' अस तरह का तेजस्ती संदेश उन्होंने अपने लोगों को दिया।

आंबेडकर की स्वतंत्रता विषयक उपर्युक्त घोषणा असपृश्य समाज के इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। ब्रिटिश सरकार भारतीयों को राजनीतिक सत्ता न दें - इस तरह की ही प्रार्थना अस्पृश्यों के नेता आज तक करते रहे थे। आंबेडकर द्वारा उनका नेतृत्व स्वीकार करने से उन्होंने सामाजिक समता और राजनीतिक समता के बारे में संघर्ष शुरू किया। यह कहकर कि, हमारा समाज स्वतंत्रतावादी है, देश को स्वतंत्रता प्राप्त होनी ही चाहिए, ऐसी उन्होंने असंदिग्ध घोषणा की।■

(पॉपुलर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित धनंजय कीर की लिखी पुस्तक डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित से साभार)

(क्रमश: शेष अगले अंक में)

डॉ. अम्बेडकर की लोकतांत्रिक विरासत

■ **डॉ. नामदेव**

''वे धन्य हैं, जो अनुभव करते हैं कि जिन लोगों में हमारा जन्म हुआ है, उनका उद्धार करना हमारा कर्तव्य है। धन्य हैं वे, जो गुलामी का खात्मा करने के लिए सब कुछ न्यौछावर करते हैं, और धन्य हैं वे, जो सुख और दु:ख, मान-सम्मान, कष्ट और कठिनाइयों, आंधी और तूफान की परवाह किए बिना तब तक संघर्ष करते रहेंगे, जब तक कि अस्पृश्यों को उनके मानवीय जन्मसिद्ध अधिकार न मिल जाएं।'' (बाबा साहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङमय, खण्ड-12, पृ. 116)

20वीं शताब्दी में सक्रिय इस युगपुरुष के उपरोक्त विचारों की पड़ताल करने से पहले 17वीं-18वीं शताब्दी के जातीय इतिहास का एक संक्षिप्त परिचय देखना आवश्यक है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में सबसे नीचे अछूत जातियां आती थीं। उनकी जनसंख्या हिन्दुओं की जनसंख्या की 20 प्रतिशत थी। अछूतों को असंख्य कठोर, नियमों और प्रतिबन्धों के कारण कष्ट भोगना पड़ता था जो अलग-अलग जगहों में अलग-अलग तरीकों से होते थे। उनके स्पर्श को अशुद्ध माना जाता था और उसे प्रदूषण का स्रोत समझा जाता था। देश के कुछ भागों, खासकर दक्षिण में अछूतों की छाया भी नहीं पड़ने दी जाती थी। इसलिए किसी ब्राह्मण को आते हुए देख या सुन कर उन्हें दूर हट जाना पड़ता था। अछूतों के पोशाक, भोजन, निवास स्थान सभी कुछ बड़े सावधानीपूर्वक नियमों द्वारा निर्धारित होते थे। वे उच्च जातियों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले कुओं और तलाबों से पानी नहीं ले सकते थे। वे केवल अछूतों के लिए विशेष रूप से आरक्षित कुंओं और तालाबों से ही पानी ले सकते थे। जहां इस प्रकार का कुआं या तालाब नहीं होता था, वहां उन्हें पोखरों और सिंचाई की नहरों का गंदा पानी पीना पड़ता था। वे न तो हिन्दू मंदिरों में प्रवेश कर सकते थे और न ही शास्त्रों का अध्ययन कर सकते थे। बहुधा उनके बच्चे ऐसे स्कूल में नहीं जा सकते थे, जहां सवर्ण लोगों के बच्चे पढ़ते थे। पुलिस और फौज जैसी सार्वजानिक सेवाएं उनके लिए बन्द थीं। अछूतों को दासोचित तथा ऐसे अन्य काम जिन्हें 'अपवित्र' समझा जाता था, करने के लिए मजबूर किया जाता था। इन कामों में झाड़ू लगाना, जूता बनाना, मुर्दो को हटाना, मरे हुए जानवरों की खाल उतारना तथा चमड़े गलाना और सिझाना शामिल थे। जमीन पर अधिकार न होने के कारण उनमें से अनेकों को असुरक्षित किसानों तथा खेतिहर मजदूरों के रूप में काम करना पड़ता था।

डॉ. अम्बेडकर ने, जो स्वयं एक अनुसूचित जाति के भुक्तभोगी थे, अपना सारा जीवन जातिगत जुल्मों के खिलाफ लड़ने में लगा दिया। उन्होंने अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ (All India Depressed Classes Federation) की स्थापना इसी उद्देश्य से की। अछूतों के बीच शिक्षा-प्रसार, उनके लिये स्कूलों के दरवाजे खोलने, सार्वजनिक कुंओं और तालाबों से पानी लेने तथा उन अन्य सामाजिक बंधनों और विभेदों को हटाने के लिए जिनसे वे उत्पीड़ित थे, उन्होंने अथक परिश्रम किया। अपनी पढ़ाई पूरी कर डॉ. बी. आर. अम्बेडकर 1923 में इंग्लैण्ड से भारत लौटे थे। कुछ महीने बड़ोदरा रियासत में काम करने के बाद वे मुम्बई में बस गये। सरकारी लॉ कॉलेज में प्रोफेसरी करने के साथ-साथ अदालत में वकालत भी करने लगे। साथ ही दलितों पर होने वाले अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाना शुरू किया। सरकार ने उनको

लेजिस्लेटिव असेंबली में नियुक्त किया। मताधिकार तथा चुनाव क्षेत्र संबंधी विचार करने के लिए नियुक्त साउथबरो कमेटी के समक्ष उन्होंने बयान दिया। साइमन कमीशन की नियुक्ति का स्वागत करते हुए बाबा साहेब ने कहा कि ''अच्छा हुआ कि उसमें कोई भारतीय सदस्य नहीं है। हम पिछड़े तबके के लोगों को उनसे कतई न्याय नहीं मिलने वाला है। ब्रिटिश सत्ताधीशों की जिम्मेदारी है कि वे हमें मानवीय अधिकार दें तथा ऊंची जाति के लोगों से किये जाने वाले अन्याय से मुक्ति दिला दें।'' साइमन कमीशन के समक्ष उन्होंने अपना निवेदन रखा। जाति, धर्म, वंश, लिंग आदि किसी भी कारण से भेदभाव न करते हुए सभी बालिग स्त्री-पुरुषों को मताधिकार मिले, पिछड़ों के लिए आरक्षित सीटें केन्द्रीय तथा प्रांतीय असेंबलियों में रखी जाएं। सरकारी नौकरी खासकर पुलिस तथा फौज में उन्हें भर्ती किया जाये आदि मांगें उन्होंने रखीं। दलित समस्या को सुलझाने में डॉ. अम्बेडकर का सबसे सशक्त रचनात्मक कार्य था डिप्रेस्ड क्लासेस (दलित वर्ग) के लिए पृथक चुनाव क्षेत्र की मांग, जिसको बाद में नौकरियों और केन्द्रीय सभाओं में आरक्षण के रूप में स्वीकार किया गया।

डॉ. अम्बेडकर 1928 से दलितों को समानता के अधिकार मिले इसलिए आन्दोलन चलाते रहे। परम्परा से चली आयी व्यवस्था के कारण जो जातियां अन्याय तथा जुल्म की शिकार बनी थीं, उनमें चेतना जगाने का काम डॉ. अम्बेडकर जी ने किया, वह भी बेहद रचनात्मक दृष्टि से। शिक्षित बनो, संघर्ष करो, संगठित रहो– यह उनका नारा था। इससे एक तरफ नाइन्साफी की शिकार बने स्त्री-पुरुष अपने अधिकारों के प्रति लड़ने के लिए कटिबद्ध हो उठे तो दूसरी तरफ जुल्म करने वाली ऊंची जातियों की विवेक-बुद्धि जागृत करने का काम महात्मा गांधी जी के कारण तेज हुआ। इस तरह भारत का लोकतंत्र न्याय, स्वतंत्रता, समता तथा बंधुभाव के चार स्तम्भों पर खड़ा हुआ।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर आधुनिक भारतीय समाज के महान सुधारकों में शुमार हैं। भारतीय समाज सुधार आंदोलन और नवजागरण काल में दलित अस्मिता और उसके विकास का मुद्दा लगभग गौण था। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय राजनीति में अपनी दमदार उपस्थिति और रचनात्मक सामाजिक संघर्षों द्वारा 'दलित जागरण' की नींव तो रखी ही, दूसरी तरफ स्त्री और आदिवासी शोषित तबकों के सशक्तिकरण के लिये भी वकालत की। उनके समाज दर्शन में दलित हित सर्वोपरि रहते हुए भी समावेशी था, सामाजिक एकता की भावना से प्रेरित था, उन्होंने जो भी कार्रवाई की वह सामाजिक बुराइयों को उखाड़ने वाला था। डॉ. अम्बेडकर के बाद का वर्तमान दौर दलित नवजागरण के दूसरे दौर से गुजर रहा है जिसमें रोज नई परिभाषाएं और सहमति-असहमति के भाव बोध सामने आ रहे हैं। समाज, राजनीति, संस्कृति, शिक्षा, कला, साहित्य, सिनेमा, मीडिया जैसे सभी प्रमुख उपादानों पर डॉ. अम्बेडकर की दलित चेतना का प्रभाव पड़ा है। जहां पहले इन संस्थाओं में दलित मुद्दा गायब होता था वहीं अब इनमें दलित मुद्दा ध्वनित होने लगा है बल्कि ये सब अब ज्यादा मानवीय और लोकतांत्रित हुए हैं।

भारत रत्न डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर (14 अप्रैल 1891-6 दिसम्बर 1956) आधुनिक भारत में संविधान निर्माता और स्वतंत्र भारत में प्रथम कानून मंत्री तो थे ही, वह बीसवीं सदी की महान शख्सियतों में से भी एक थे। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर महार जाति के थे और वे एक अखिल भारतीय नेता थे। ब्रिटिश सरकार और सवर्ण हिन्दुओं से समझौता करते हुए उन्होंने देश के सभी दलितों का प्रतिनिधित्व किया था। महाराष्ट्र में डॉ. अम्बेडकर ने 1920 के दशक में अस्पृश्यता विरोधी एक बड़े आंदोलन की शुरुआत की। यह आंदोलन अनेक रूपों में देश के विभिन्न भागों में आज भी जारी है। डॉ. अम्बेडकर समावेशी विकास के पक्षधर होते हुए भी राष्ट्र के संसाधनों में सर्वाधिक उपेक्षित, शोषित, पीड़ित दलित समाज की भागीदारी, हिस्सेदारी और दलित सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध और अटल थे जिसकी व्यावहारिक सफलताओं को प्राप्त करने के लिए राजनीतिक साधनों को प्रयोग में देखा। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि इनके प्रयोग द्वारा ही आधुनिक समाज में उच्च वर्गों के साथ सामाजिक और आर्थिक समता को प्राप्त किया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने धर्म निरपेक्ष (सैकूलर) आधार पर स्वतंत्र श्रमिक दल (आई.एल.पी.) का गठन किया जिसका मुख्य उद्देश्य श्रमिक वर्गों के हितों की रक्षा करना था। यह दल सभी जातियों के श्रमिकों के लिए खुला था। बाद में, डॉ. अम्बेडकर ने चुनाव लड़ने और अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करने हेतु 1954 में 'अनुसूचित जाति संघ' (एच.सी.एफ.) बनाया जिसका मकसद नौकरियों में आरक्षण और राजनीतिक पदों को प्राप्त करने की गारंटी को सुनिश्चित करना था। आगे चलकर इस पार्टी के विजन का विस्तार किया गया जिससे अनुसूचित जाति के साथ-साथ अनुसूचित जनजातियां और पिछड़ी जातियां भी इसमें सम्मिलित हो सकीं। इस नई प्रगतिशील प्रवृत्ति के कारण ही एच.सी.एफ. को 1956 में 'रिपब्लिकन पार्टी' के रूप में बदल दिया गया। सन् 1930 के दशक में पृथक निर्वाचन-मंडल की मांग के बाद डॉ. अम्बेडकर और महात्मा गांधी में गहरे मतभेद उत्पन्न हो गये यह किसी से छिपा नहीं है, जिसका परिणाम पूना समझौते में हुआ। इसी तरह 1930 के शुरुआती वर्षों में डॉ. अम्बेडकर ने यह निर्णय लिया कि अछूतों की सामाजिक स्थिति

में सुधार करने का एकमात्र उपाय हिन्दू धर्म को त्यागना है। कुल मिलाकर देखा जाए तो यह स्पष्ट पता चलता है कि डॉ. अम्बेडकर एक बेहद तार्किक, स्पष्टवादी और यथार्थवादी प्रयोगधर्मी नेता थे। उन्होंने दलित हित को सर्वोपरि रखते हुए भी सामाजिक एकता की भावना का सम्मान किया।

डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक दृष्टि खुली और प्रगतिशील थी तभी तो उन्होंने अगस्त 1936 में 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी' बनाई और उसके एक सम्मेलन में जोर देकर कहा था कि इस देश के दलितों–मजदूरों के दो शत्रु हैं– ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद। इनके विरुद्ध संघर्ष करने से ही उनको अपने दुखों से मुक्ति मिल सकती है। वास्तव में डॉ. भीमराव अम्बेडकर सामाजिक–आर्थिक विषमता के घोर विरोधी थे और समानता के कट्टर पक्षधर। उनके लिए आर्थिक समानता उतनी ही महत्वपूर्ण थी, जितनी सामाजिक। उन्होंने संविधान–सभा में भाषण देते हुए कहा था कि यदि आर्थिक समानता स्थापित नहीं की गई तो ये राजनीतिक अधिकार कागजों पर ही धरे रह जायेंगे। जब तक आर्थिक समानता न होगी, तब तक वास्तविक जनतंत्र स्थापित नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी कहा था कि यदि समय रहते आर्थिक विषमता दूर न की गई तो जो लोग इससे पीड़ित हैं, वे राजनीतिक लोकतंत्र की इमारत उड़ा देंगे। इधर काफी लम्बे समय से डॉ. अम्बेडकर को अमरीकापरस्त और अंग्रेज भक्त साबित करने की कोशिश की जाती रही है जबकि डॉ. अम्बेडकर अपनी सम्पूर्णता में भारतीय समाज में मौजूद सामाजिक–आर्थिक विषमता को खत्म कर समावेशी समाज के विकास के पक्षधर थे। इस संदर्भ में दलित चिंतक और पत्रकार कंवल भारती का यह कथन महत्वपूर्ण लगता है– ''अम्बेडकर के आंदोलन का अर्थ था जातिविहीन और वर्गविहीन समाज का निर्माण। वे जनतंत्र के प्रबल समर्थक थे और जनतंत्र के द्वारा ही सामाजिक क्रांति चाहते थे। उन्हें तानाशाही पसन्द नहीं थी, चाहे वह किसी वर्ग या व्यक्ति की हो।... उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दलित वर्गों की मुक्ति वर्ग–हित की लड़ाई में है, न कि जाति–हित में। जाति–हित ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद को ही मजबूत करता है जबकि वर्गहित समाजवाद का रास्ता है। यही मुक्ति पथ है।''

हम यहां पर डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित किये गये संस्थाओं के कुछ उदाहरण से अपनी बात को आगे बढ़ाना चाहते हैं, यहां उनका विस्तृत विवरण देना उद्देश्य नहीं है। जैसा कि हमने डॉ. अम्बेडकर की विचार दृष्टि को प्रगतिशील कहा है, लेकिन कुछ संकीर्ण मानसिकता और पुरातनपंथी मायालोक में घिरे 'लोक' को डॉ. अम्बेडकर अराजक और विध्वंसक लगते हैं। इसके बरक्स जब हम डॉ. अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन और कर्म को तटस्थ होकर देखते हैं तो पता चलता है कि डॉ. अम्बेडकर केवल दलित या पिछड़े वर्गों के हितों के लिए ही नहीं सोचते थे बल्कि वे समाज की प्रत्येक उस व्यवस्था और तंत्र के खिलाफ थे जो आदमी–आदमी में भेद करके एक को हाशिये पर डाल देता है और आगे बढ़ने के सारे अवसर उससे छीन लेता है। वास्तव में वह समतामूलक समाज की प्रतिस्थापना चाहते थे।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने हिन्दू शास्त्रों का खंडन इसलिए किया था क्योंकि कहीं न कहीं ये शास्त्र ही अस्पृश्यता को बढ़ावा दे रहे थे। सवर्ण जाति के लोग जो बर्ताव हजारों वर्षों से दलित–पिछड़ी जाति के लोगों के साथ कर रहे थे उसके केन्द्र में ये हिन्दू शास्त्र ही थे। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने 1926 में 'मनुस्मृति' का दहन किया था, क्योंकि

हम यहां डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित की गई संस्थाओं के कुछ उदाहरण से अपनी बात को आगे बढ़ाना चाहते हैं, यहां उनका विस्तृत विवरण देना उद्देश्य नहीं है। जैसा कि हमने डॉ. अम्बेडकर की विचार दृष्टि को प्रगतिशील कहा है, लेकिन कुछ संकीर्ण मानसिकता और पुरातनपंथी मायालोक में घिरे 'लोक' को डॉ. अम्बेडकर अराजक और विध्वंसक लगते हैं। इसके बरक्स जब हम डॉ. अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन और कर्म को तटस्थ होकर देखते हैं तो पता चलता है कि डॉ. अम्बेडकर केवल दलित या पिछड़े वर्गों के हितों के लिए ही नहीं सोचते थे बल्कि वे समाज की प्रत्येक उस व्यवस्था और तंत्र के खिलाफ थे जो आदमी–आदमी में भेद करके एक को हाशिये पर डाल देता है और आगे बढ़ने के सारे अवसर उससे छीन लेता है। वास्तव में वह समतामूलक समाज की प्रतिस्थापना चाहते थे।

ऐसे ग्रन्थ समाज को वर्ण व्यवस्था में बांट कर समाज में असमानता को बढ़ावा दे रहे थे। डॉ. अम्बेडकर की यह कार्यवाही सिर्फ दलित मुक्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सम्पूर्ण भारतीय हिन्दू स्त्री समाज का पुरुष वर्चस्व से मुक्ति के प्रश्न से भी जुड़ा था और है। हम यह देखते हैं कि दुनिया के समस्त धर्मग्रन्थों ने स्त्री को दोयम दर्जे पर रखा है, उनके अधिकार पुरुष के बाद आते हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्त्री भोग-विलास की वस्तु से कुछ अधिक नहीं है। भारतीय समाज में किसी भी जाति-धर्म की स्त्री हो, सर्वाधिक शोषित-पीड़ित है; जबकि दुनिया में सर्वाधिक देवियों (गोडेज) की पूजा भारत में ही की जाती रही है। भारतीय संस्कृति में 'स्त्री' को पूजने की बात की जाती है, जबकि वास्तव में उसके साथ दासों जैसा बर्ताव होता है। हद तो यह है कि दो माह की बच्चियों से लेकर नब्बे वर्षीया वृद्धाओं के साथ पाशविक और अमानवीय बर्बरता की सीमा से बाहर जाकर बलात्कार किया जाता है, उनके देह को क्षत-विक्षत कर उनकी हत्या कर दी जाती है और पुरुष वर्चस्व की मानसिकता से ग्रस्त हमारे न्यायालय जल्दी न्याय प्रदान न कर दोषियों के हौंसलों को बुलंद करते हैं। ऐसे में पुरुष अहं और जातिवाद के पोषक *मनुस्मृति* का बहिष्कार और दहन कर डॉ. अम्बेडकर ने दलित और स्त्री समाज की मुक्ति का एक मार्ग निकालकर युगपरिवर्तनकारी कार्य किया था।

इस तरह हम पाते हैं कि डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारतीय संविधान के सिर्फ रचयिता ही नहीं बल्कि एक आधुनिक समाज-निर्माता भी थे। उनकी 'सोशल इंजीनियरिंग' की तकनीक इतनी मजबूत और कुशल है कि उसका विकास समाज-संस्कृति के समस्त क्षेत्रों में हुआ है, लेकिन उसकी गति और फैलाव अभी भी कम है। स्वतंत्र भारत में जितने भी हाशिये के आंदोलन शुरू हुए हैं चाहे वह दलित आंदोलन, स्त्री आंदोलन, आदिवासी आंदोलन, किसान-मजदूर आंदोलन, अल्पसंख्यक आंदोलन, आमजन आंदोलन इत्यादि सभी के सभी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से डॉ. अम्बेडकर के समाज दर्शन से प्रभावित और उत्प्रेरित दिखते हैं। पिछली बीसवीं सदी से लेकर आज के 21वीं सदी के दूसरे दशक के इस दौर में भी डॉ. अम्बेडकर के प्रगतिशील विचारों का निरंतर विकास हो रहा है और समाज संस्कृति, कला साहित्य, सिनेमा, मीडिया इत्यादि प्रमुख इंसानी घटकों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

साहित्य और कला समाज में जन्म लेते हैं और अंततः समाज को प्रभावित करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि आज के दौर में भी बखूबी अम्बेडकरवादी विचारधारा का साहित्य और सिनेमा पर प्रभाव पड़ रहा है और यह प्रभाव जनक्रांति में तब्दील हो रहा है। अम्बेडकरवाद का सर्वाधिक विकास साहित्य के क्षेत्र में हुआ है जो मराठी से शुरू होकर हिन्दी समेत समस्त भारतीय भाषाओं में अपनी सशक्त मौजूदगी दर्ज करा रहा है। आज भी आधुनिक दलित साहित्य के केन्द्र में डॉ. अम्बेडकर के विचार दर्शन ही हैं। दलित साहित्य के केन्द्र में परोक्ष-प्रत्यक्ष रूप से डॉ. अम्बेडकर निरंतर केन्द्रीय विचार बिन्दु बने हुए हैं। सुप्रसिद्ध दलित साहित्यकार शरण कुमार लिम्बाले अपनी एक कहानी 'आत्मकथा' में लिखते हैं– ''बाबासाहेब अम्बेडकर की वजह से महार जाति जल्दी साक्षर हो गयी। इस जाति के पास संगठन है। इससे उन्हें सुविधाओं का लाभ मिल जाता है। लेकिन दलितों की अन्य जातियां अभी भी अंधेरे में लड़खड़ा रही हैं। अम्बेडकर जी के विचारों का महत्व अब उनके ध्यान में आने लगा है। अम्बेडकर जी की सोच समूचे सर्वहारा की सोच है। हम सबकी मुक्ति की सोच है। अब हम इसे पहचानने लगे हैं।'' कहने का तात्पर्य यह है कि जो दलित जातियां अभी भी सुविधाओं और विकास से दूर हैं, वे भी अम्बेडकरवाद को अपना अस्त्र बनाकर अपने विकास के लिए संघर्ष कर रही हैं। यह एक सकारात्मक दलित पहलू है कि अम्बेडकरवाद दलितों में मौजूद अंतर्जातीय भेदभाव और अहं को दूर कर उनमें एकीकरण की भावना का संचार कर रहा है। नहीं तो वे झूठे अभिमान और जातीय अहं की तुष्टिकरण की अभिलाषा में पासी महासभा, धोबी महासभा, वाल्मीकि समाज इत्यादि में डूबे रहेंगे। बहरहाल हिन्दी दलित साहित्य के प्रख्यात कथाकार जयप्रकाश कर्दम भी 'सूरज' कहानी के माध्यम से अम्बेडकरवादी विचारधारा के सफलतम विकास क्रम को दिखलाते हैं। इस कहानी के पात्र सुमन और सूरज दोनों महाविद्यालय में पढ़ते हैं, लेकिन सूरज दलित स्वाभिमान और दलित चेतना से भरा हुआ है। उसके प्रभाव से सुमन भी कॉलेज में दलित गतिविधियों से संबंधित क्रियाकलापों में सक्रिय होने लगती है, हालांकि उसके परिवार में अम्बेडकरवादी माहौल था। जयप्रकाश कर्दम 'सूरज' कहानी में लिखते हैं– ''अब से पहले सुमन कभी इस तरह की किसी मीटिंग में नहीं गयी थी। ऐसी कोई मीटिंग कॉलेज में इससे पहले शायद हुई भी नहीं थी कि जाने की जरूरत पड़ती। सुमन के घर में जरूर इस तरह का माहौल था। उसके पिता अम्बेडकरवादी व्यक्ति थे। रोज कहीं न कहीं किसी मीटिंग या कार्यक्रम में भाग लेने वह जाते थे। डॉ. अम्बेडकर की जीवनी से लेकर उनकी लिखी लगभग समस्त पुस्तकें उसके घर में थीं। उसके पिता उन पुस्तकों को पढ़ते थे और कभी-कभार परिवार के सब लोगों को भी डॉ. अम्बेडकर के जीवन-संघर्ष और उनकी उपलब्धियों के बारे में बताते थे। इस सबसे सुमन के मन में भी डॉ. अम्बेडकर के प्रति श्रद्धा पैदा हो गयी थी। साथ ही सामाजिक चेतना की बातों में भी वह रुचि लेने

लगी थी।'' इस कहानी से पता चलता है कि अम्बेडकरवादी विचारधारा निरंतर गतिशील है, लेकिन कुर्बानी की कीमत पर। क्योंकि मुक्ति के इस मार्ग में असंख्य दलित कुर्बान हुए हैं, उन्हीं में 'सूरज' भी है जिसकी सवर्ण मानसिकता से कुंठित लोग हत्या कर देते हैं। लेकिन वह मर कर दलित स्वाभिमान का प्रतीक बन कर शेष दलितों की प्रेरणा बन जाता है। असलियत में आज जितना भी दलित साहित्य लिखा जा रहा है उसमें हर दलित मनुष्य की अपनी संवेदनाएं और अपने दुख हैं। लेकिन कहीं न कहीं उसमें अम्बेडकर के विचार का समावेश भी है जो हिन्दी-मराठी दलित साहित्य के ही नहीं बल्कि प्रत्येक भारतीय भाषा के दलित साहित्य की नींव है।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के महानिर्वाण के बाद हिन्दी पट्टी में शुरू हुई दलित चेतना अब दलित नवजागरण में परिवर्तित हो चुकी है। अम्बेडकर की प्रेरणा से ही अब *भारतीय संस्कृति में दलितों और शूद्रों का योगदान* जैसी उल्लेखनीय किताब प्रकाशित होती है जिसमें साहित्य, संस्कृति, अर्थ, कला (मूर्तिकला, संगीत, नृत्य, चित्रकारी, गायन) इत्यादि मनुष्यता को जीवंत और रचनात्मक रखने वाले घटकों के प्रति पुनर्विचार, पुनर्लेखन की मांग की जाती है, बल्कि पुनर्विचार किया जाता है, जिसमें प्रख्यात रंगकर्मी, लेखक, चिंतक, अभिनेता गिरीश कर्नाड यह घोषित करते हैं कि पिछले दो सौ सालों के ब्रिटिश कालीन भारत में रंगमंच, संगीत, नृत्य एवं ललित कलाओं के क्षेत्र में भूमंडलीकरण के असर के कारण इसका सारा लाभ ब्राह्मणों को चला गया। पिछले हजारों सालों से जिन दलित, आदिवासी, अति पिछड़ी जातियों ने भारतीय संस्कृति की प्रदर्शनकारी एवं ललित कलाओं को बचाए रखा, नए दौर में वे ही इसके लाभ से वंचित कर दी गईं। 19वीं सदी के नवजागरण के दौरान शहरी बुर्जुआ सवर्ण मध्यवर्ग ने संस्कृति का नव-ब्राह्मणीकरण ही नहीं किया, अपना वर्चस्व भी स्थापित कर डाला। हमें भूमंडलीकरण की बहस को सामाजिक न्याय के संदर्भ में भी देखने की जरूरत है। भारत में अंग्रेजों के आने से पहले भारतीय कलाएं मुख्यत: दलित और ग्रामीण पिछड़े समुदायों तक सीमित थीं। सवर्ण प्रभुवर्ग इनसे परहेज करता था। अंग्रेजों के आने के बाद कलकत्ता, मुंबई और मद्रास में नई शहरी सभ्यता विकसित होने के कारण उभरे सवर्ण शिक्षित मध्यवर्ग ने इन्हें अपनाया। कलाओं का तेजी से सवर्णीकरण हुआ और भूमंडलीकरण ने इसे दुनिया भर में प्रतिष्ठित किया। गिरीश कर्नाड के इस वक्तव्य में सामाजिक न्याय का प्रश्न भी आया है जो सीधे-सीधे अम्बेडकर से जुड़ा है। अत: भूमंडलीकरण कहीं-कहीं सवर्ण समाज के हित को पोषित कर रहा है, इस नई वैश्विक प्रक्रिया में भी दलित-आदिवासी इत्यादि शोषित तबकों को व्याख्यायित करना भी डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक विचारधारा के जीवित और गतिशील होने का प्रमाण है।

समकालीन मीडिया माध्यमों में सिनेमा सबसे ज्यादा प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। लेकिन साहित्य की तरह सिनेमा ने भी दलित पात्रों से अपनी दूरी बनाए रखी थी। परन्तु अम्बेडकरवादी विचारधारा से अनुप्रेरित दलित साहित्य के जोरदार दस्तक और आन्दोलन के छींटे भी सिनेमा पर भी पड़ने लगे हैं जिसके कारण अब 21वीं सदी का भारतीय सिनेमा दलित जीवन का चित्रण करने लगा है। वर्ष 2012 में मुख्यधारा सिनेमा के निर्देशक संजीव जायसवाल ने *शूद्र द राइजिंग* जैसी ऐतिहासिक फिल्म बनाई है जो भारतीय समाज के 25 करोड़ दलितों की दुखद गाथा कहती है। *शूद्र द राइजिंग* में दिखाया गया है कि प्राचीन समय में दलितों को गले में घंटी, हांडी और कमर में पत्ते बांधने पड़ते थे। घंटी इसलिए कि जब वे चलें तो सवर्ण जातियों को पता चल सके कि वे शूद्र हैं, हांडी इसलिए थी कि वे जमीन पर थूक न सकें और पत्ते इसलिए कि चलने के दौरान पैर से पड़े दाग पोंछते चले जिससे की शासक सवर्ण जातियां अशुद्ध न हों। असलियत में यह फिल्म देश के 25 करोड़ उन दलितों की कहानी है जिन्हें जातिगत कारणों से इंसान नहीं माना गया। इस फिल्म में शूद्रों के ऐतिहासिक उत्पीड़न और संघर्ष दोनों स्थितियों को दिखाया गया है। भारतीय फिल्मी इतिहास की यह पहली फिल्म है जो दलित संघर्षों और उनके उभार को व्यापक फ्रेमवर्क में रखती है। फिल्म में 'हमें गर्व है, हम शूद्र हैं' जैसे गीत का इस्तेमाल किया है जो दलित अस्तित्व की सांस्कृतिक अनुभूति को एहसास कराने के साथ-साथ दलित समाज को अपने शूद्र होने पर गर्व करने का आह्वान करता है। वास्तव में अगर प्रत्येक दलित अपने पर गर्व करने लगे तो दलितों के साथ-साथ देश की तस्वीर भी बदल जायेगी। गौर करने वाली बात यह है कि इस फिल्म में दलितों की मुक्ति के पीछे डॉ. अम्बेडकर के उभार को दिखाया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे साहित्य हो या सिनेमा सर्वत्र डॉ. अम्बेडकर प्रेरणा बने हुए हैं। वस्तुत: हिन्दी सिनेमा द्वारा जातीय प्रश्नों की उपेक्षा के बावजूद कुछ एक दलित पात्र फिल्म में अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं जिनमें 'गॉड मदर', 'बैंडिट क्वीन', 'आक्रोश', 'आरक्षण', 'पिपली लाइव' प्रमुख हैं।

एक और प्रामाणिक तथ्य यह भी है कि डॉ. अम्बेडकर के विचार दर्शन को सीमित करने की कोशिश की गई है। जैसे गैर दलित समाज डॉ. अम्बेडकर को सिर्फ दलितों का नेता मानता रहा है तो दलित भी डॉ. अम्बेडकर को सिर्फ अपना ही नेता मानते रहे। दोनों ही स्थितियां समाज के विरुद्ध हैं, नुकसानदेह हैं। इससे डॉ. अम्बेडकर के समतामूलक

विचार सीमित होते हैं, उनका तीव्रता से फैलाव नहीं होता। लेकिन यह भी सच है कि कुछ एक गैर दलित शिक्षक, अध्येता दलित आंदोलन और दलित साहित्य के प्रति अपनी सहानुभूति और संवेदना के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकारने लगे हैं। भले ही उनके पीछे जो भी आर्थिक, व्यावसायिक, अकादमिक प्रसिद्ध की चाहत जैसे कारण रहे हों। डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन परिवर्तनकारी कार्यों और संघर्षों में बीता। उन्होंने ऊंची से ऊंची उपाधि हासिल की। अमेरिका, इंग्लैण्ड जैसे देशों में पढ़ाई की, भारत का संविधान लिखा, पहले कानून मंत्री बने लेकिन उनमें दंभ या अहम् बिल्कुल न था ऐसा उनकी जीवनियों से मालूम पड़ता है। समकालीन दलित नेताओं और साहित्यकारों का डॉ. अम्बेडकर की इन चारित्रिक विशेषताओं से भी प्रेरणा लेनी चाहिए। आजकल का दलित आंदोलन और दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, जो कि पूरी ईमानदारी से सवर्णों के कुकर्मों को गरियाता है, धिक्कारता है, ललकारता है अब सिर्फ उससे ही काम नहीं चलने वाला, अब उसको डॉ. अम्बेडकर की तरह समाज जोड़ने वाले समतामूलक समाज को मजबूत करने वाले तत्वों को अपनाने के लिए लामबंद भी हो जाना चाहिए, तभी हम सही मायने में डॉ. अम्बेडकर द्वारा पोषित समतामूलक दर्शन और जातिप्रथा मुक्त समाज का पुनर्निर्माण कर पायेंगे।

डॉ. अम्बेडकर के रचनात्मक कार्यो के आधार पर यहां हम पुरजोर शब्दों में यह कहना चाहते हैं कि डॉ. अम्बेडकर भारतीय समाज के समस्त शोषित, प्रताड़ित तबकों के बीच वह 'वंश वृक्ष' अथवा 'वट वृक्ष' हैं जिसकी शाखाएं सभी को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से छाया प्रदान करती हैं। साथ ही हम आज भी यह महसूस करते हैं कि भारत का हर बच्चा महात्मा गांधी की जन्म तिथि, जन्म स्थान और दलितों के लिए उनके काम के बारे में जानता है, लेकिन अम्बेडकर के बारे में देश के स्कूलों की किताबें कितना बताती हैं, बल्कि उनके स्मारक भी पिछले दशकों में ही बने; वो भी सरकार की ओर से कम और दलितों द्वारा ज्यादा। दलितों के प्रति सवर्ण समाज की यह उदासीनता खत्म होनी चाहिए, बल्कि हर हाल में यह सूरत बदलनी चाहिए। तभी सही अर्थों में राष्ट्र निर्माण सम्भव हो सकेगा। जिस राष्ट्र का एक बड़ा तबका उपेक्षित हो, शोषित हो, भागीदारी से दूर हो, संसाधनों से हीन हो ऐसी स्थिति में कोई भी राष्ट्र निर्माण अधूरा होगा। असलियत में डॉ. भीमराव अम्बेडकर इसी अधूरे राष्ट्रवाद को पाटने का अनिवार्य विकल्प हैं।

भारत के वंचित समाज के उत्थान और संघर्ष की लड़ाई में डॉ. अम्बेडकर की रचनात्मक भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह सुखद स्थिति है कि भारत के दलित समाज ने डॉ. अम्बेडकर जैसे योद्धा के रूप में विश्व को बीसवीं शताब्दी का महान व्यक्तित्व दिया है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा दलितों के लिये किये संघर्ष की ईमानदारी और निष्ठा आज दलित समाज की प्रेरणा और धरोहर है। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने दलितों की समस्याओं का मूल मर्म धार्मिकता में देखा था। इसके समाधान की खोज में वे विश्व की धार्मिक यात्रा पर निकल पड़े थे। इस यात्रा में उन्होंने अपने व्यस्त जीवन का 21 वर्ष का लंबा समय लगाया था। उन्होंने विभिन्न धर्मग्रंथ पढ़े और धार्मिक लोगों के अनुभव प्राप्त किये। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संसार के सारे धर्मों में बौद्ध धर्म ज्यादा जनतांत्रिक है, और इसको ग्रहण किया।

डॉ. अम्बेडकर का यह मंथन और कार्यवाही उस हिन्दू धर्म की सड़ी-गली मान्यताओं पर प्रबल प्रहार था, जिसके अन्तर्गत समाज का एक अभिन्न अंग दलित है, जिसे अस्पृश्य, दास भी कहा गया है। उसके पास लिखित ज्ञान और धर्मशास्त्र नहीं है। उसके पास शस्त्र और सत्ता नहीं है। उसके पास धन और धन की साख नहीं है। उससे लड़ने वालों ने उसे निहत्था बना दिया है। उसके विरोधियों ने ये सारी चीजें आपस में समझौता कर बांट ली है। वह शास्त्रविहीन, शस्त्रविहीन और धनविहीन हो गया है। ऐसे वर्ग के गुलाम बनने में कोई बाधा नहीं आती। वास्तव में पहले दलित समाज एक गुलाम वर्ग के रूप में विद्यमान था। अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भिक चरण में डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दुओं के राम मंदिर में प्रवेश पाने के लिए लंबा संघर्ष किया था। वास्तव में यह कार्यवाही हिन्दू समाज के झूठे अहम् और दंभ को तोड़ना था। इसके बाद उन्होंने दलितों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान हेतु लम्बी लड़ाई लड़ी, जिसका प्रतिफलन उन्हीं द्वारा रचित आधुनिक भारत के संविधान में हुआ।

यहां रेखांकित करना जरूरी है कि भारत जैसे जातिवादी और आदिम परम्परागत मूल्यों वाले समाज में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की लोकतांत्रिक विरासत का निरंतर विकास हो रहा है। डॉ. अम्बेडकर के सतत संघर्षों और प्रेरणा से ही आज भी लोकतांत्रिक मूल्यों में आस्था रखनेवाले सामाजिक, राजनीतिक संस्थाएं, व्यक्ति, नेता, शिक्षक, कलाकार, बुद्धिजीवी इत्यादि सभी वर्ग-समूह अपनी-अपनी हैसियत और स्तर से समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास कर रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर के समतामूलक विचारदर्शन के जिंदा होने का यह प्रमाण है और भारतीय लोकतंत्र में जनवादी समतामूलक मूल्यों की जीत है, लेकिन फिर भी जातिविहीन देश की पुनर्स्थापना का प्रश्न अभी भी शेष है।■

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के करोड़ीमल कॉलेज में हिन्दी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं)

डॉ. अम्बेडकर – दलितों के उद्धारक

■ डॉ. सुमा टी. रोडनवर

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर आधुनिक भारत के इतिहास- निर्माताओं में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं। आजीवन उन्होंने असमानता तथा अन्याय पर आधारित समाज व्यवस्था के विरुद्ध बगावत की क्योंकि स्वयं उनका जन्म समाज के अछूत कहे जाने वाले वर्ग में हुआ था। ज्ञान की अखंड साधना के बल पर अछूतों में ज्ञान की रोशनी जलाई और अपने उदाहरण से जन्म, वर्ग और जाति की श्रेष्ठता की मान्यताओं को ध्वस्त किया। इनका मानना था कि जातिप्रथा सामाजिक बुराई है और इसे जड़ सहित समाप्त करना चाहिए।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर दलितों के मसीहा थे, उन्हें दलित मुक्ति आंदोलन का सैद्धांतिकी का निर्माता माना जाता है। दलितों की त्रासदी को उन्होंने झेला और भोगा था। ऐसी नारकीय जिदंगी के वे विरोधी थे। डॉ. अम्बेडकर के चिंतन का मुख्य आधार समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव था। उन्होंने यह भाव का मूल्य गौतम बुद्ध के दर्शन से लिया था। महात्मा ज्योतिबा फुले ने 'गुलामगिरी' किताब लिखकर सबसे पहले दलितों की मुक्ति का बिगुल बजाया। भक्तिकाल में कबीरदास जैसे संत ने जातिप्रथा, अन्धविश्वास तथा अज्ञानता का खुलकर विरोध किया। इसलिए डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने भगवान बुद्ध को अपना पहला गुरु, कबीरदास को दूसरा गुरु तथा महात्मा ज्योतिबा फुले को तीसरा गुरु माना। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने दलित मुक्ति आंदोलन को एक कुशल राजनीतिकार सेना नायक और सिद्धांतकार की तरह आगे बढ़ाया। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को आत्मसात कीके डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ज्ञानी, दार्शनिक तथा सामाजिक दृष्टा बने। उन्होंने अपने विचारों से भारतीय चिंतन प्रणाली, दर्शन धर्म तथा समाज को प्रभावित किया। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर प्राध्यापक, समाज सुधारक, बैरिस्टर तथा इतिहासकार तथा अन्त में भारतीय संविधान के शिल्पी भी बने।

इनका जन्म 14 अप्रैल 1891 में सूबेदार मेजर रामजी सकपाल के घर हुआ, अपने माता-पिता की वे 14वीं और अंतिम संतान थे। पिता सेना में सूबेदार मेजर थे, जिस वर्ष बाबासाहेब अम्बेडकर का जन्म हुआ, उस साल पिता सेवानिवृत हुए। घर की माली हालत ठीक नहीं थी फिर भी बाबासाहेब को पढ़ने के लिए स्कूल भेजा गया। स्कूल में जाति के कारण उन्हें अनेक अपमान सहने पड़े लेकिन वे डरे नहीं, अपने संकल्प से डिगे नहीं। कड़ी मेहनत कर सन् 1907 को उन्होंने मैट्रिक पास किया।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर को अपने स्कूल जीवन में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, जिसका खुलासा अपने संस्मरणों में वे इस प्रकार करते हैं- ''मेरे स्कूल में एक मराठा जाति की स्त्री नौकर थी वह स्वयं अशिक्षित थी, लेकिन वह छुआछूत मानती थी। मुझे छूने से बचती थी। मुझे याद है कि एक दिन मुझे बहुत

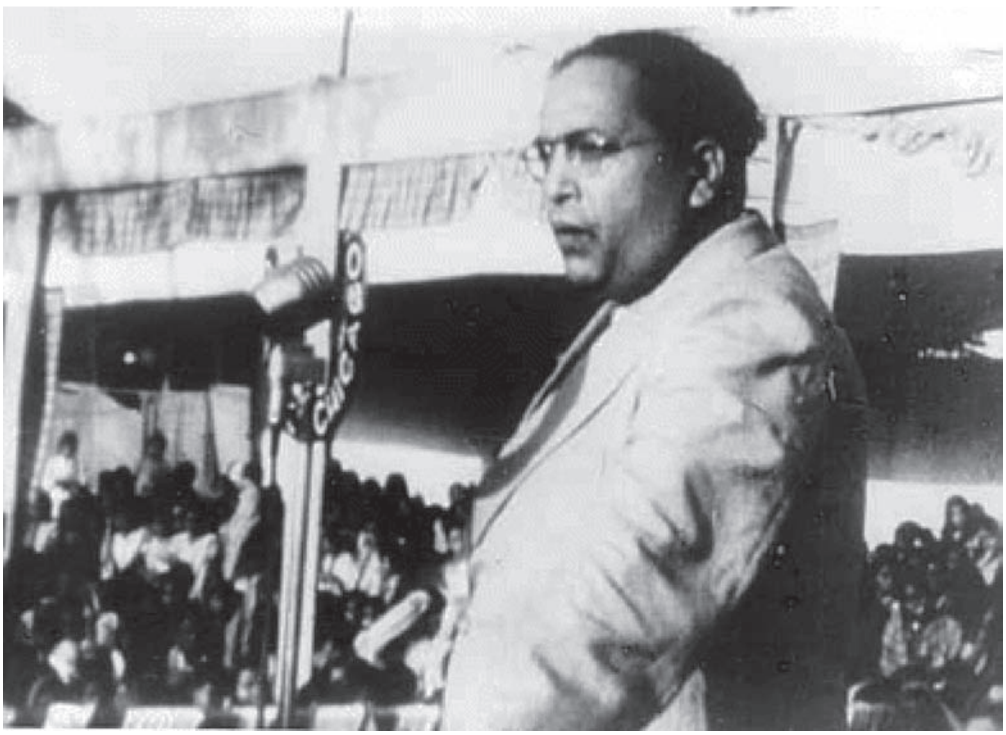

प्यास लगी थी। नल को छूने की मुझे अनुमति नहीं थी। मैंने मास्टर जी से कहा कि मुझे पानी चाहिए। उन्होंने चपरासी को आवाज़ देकर नल खोलने के लिए कहा। चपरासी ने नल खोला और तब मैंने पानी पिया। चपरासी गैर-हाजिर होता तो मुझे प्यासा ही रहना पड़ता। घर जाकर ही मेरी प्यास बुझती।''[1]

बचपन से ही उन्हें अनेक बाधाएं सहनी पड़ी। इन सभी बाधाओं को उन्होंने बड़े हिम्मत के साथ पार किया। जिन्दगी ने उन्हें इतना तो सिखा दिया था कि दलित वर्गों तथा अन्य पिछड़े वर्गों का उद्धार शिक्षा से ही सम्भव है। शिक्षा के बिना उनकी प्रगति नहीं हो सकती, नहीं ही ज्ञान के बिना सत्ता मिल सकती है। इसलिए शिक्षा के प्रति उनकी ललक बढ़ती चली गई और एकाग्र मन से उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर को शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा कुछ उदार हृदय व्यक्तियों ने दी। उनकी मदद और प्रेरणा से ही उन्होंने देश-विदेश में उन्नत शिक्षा हासिल की। बम्बई सरकार के विवरण में उनकी शैक्षिक प्रगति के विषय में निम्नलिखित टिप्पणी मिलती है- ''भीमराव रामजी अम्बेडकर गांव अम्बेड (तालुक दापोली जिला रत्नागिरी) के हैं और महार जाति के हैं। वे बंबई विश्वविद्यालय के स्नातक हैं तथा उन्होंने एल्फिस्टन कॉलेज से बी.ए. पास किया। उन्होंने बड़ौदा रियासत की नौकरी में प्रवेश किया। सन् 1913 में उन्हें बड़ौदा सरकार की तरफ से अर्थशास्त्र की उच्च शिक्षा के लिए अमरीका भेजा गया। एस.एस. सार्डना नामक जहाज से 15 जून, 1913 को उन्होंने बम्बई छोड़ा।'' डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने अमरीका वास की अवधि दो साल बढ़ाने के लिए बड़ौदा महाराज से आवेदन किया था। उनकी अवधि बढ़ा दी गई। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पीएच.डी उपाधि प्राप्त की और आगे की पढ़ाई के लिए इंग्लैण्ड चले गए। ज्ञान अर्जित करने के प्रति उनकी लालसा कम नहीं हुई। ''उनकी ज्ञान-पिपासा बहुत तीव्र थी। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि पश्चिम शिक्षा के बाजार की प्रतिस्पर्धा में वे अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं और ज्ञान तथा योग्यता से सवर्ण हिन्दुओं के किसी भी जगमगाते तारे से वे कम नहीं है। अतः वे इस इरादे से इंग्लैण्ड गए ताकि बैरिस्टरी का अध्ययन करें और लन्दन-विश्वविद्यालय से एम.एससी. की उपाधि प्राप्त करें।'' इस बीच उनकी छात्रवृत्ति खत्म कर दी गई और अध्ययन पूर्ण करने से पहले उन्हें लौटना पड़ा। भारत लौटकर वे नौकरी करने लगे वह भी बड़ौदा महाराज के सैनिक सचिव बनकर। शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें कभी तृप्ति नहीं हुई। डॉ. अम्बेडकर को शिक्षा अर्जित करने में जो रुचि थी वह इस उदाहरण से ही स्पष्ट है। कोलंबिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के सामने अम्बेडकर जी की मूर्ति बैठाया गया है। एक भारतीय ने यह देख आश्चर्य से पूछा यह कौन है और इसकी मूर्ति यहां क्यों लगाई गई है। तब पुस्तकालय अध्यक्ष कहते हैं कि यह एक भारतीय हैं, इनका नाम डॉ. बी.आर. अम्बेडकर है। विश्व के उन गिने चुने व्यक्तियों में एक है जिसने कोलंबिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय यानि यहां के पुस्तकालय की एक-एक किताब पढ़ डाली है। आदर्श स्वरूप उनकी मूर्ति यहां स्थापित की है। आगे चलकर डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने दलितों को नारा दिया 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो।''

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने सामाजिक सुधार तथा अस्पृश्यता निवारण के लिए अनेक कृतियां लिखी जिनका अपना महत्त्व है। कृतियों के नाम इस प्रकार है-जातिविनाश, शूद्र कौन, अस्पृश्य, बुद्ध और उनका धम्म आदि। डॉ. अम्बेडकर ने भारत के मुक्ति आंदोलन के साथ दलित मुक्ति के प्रश्न को उठाया। वे राजनीतिक परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने दलित मुक्ति के सवालों का डटकर जवाब दिया और राष्ट्रीय नेता, विद्वानों से सीधी बात की। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन के बारे में इस तरह कहा- "Turn any direction you like Caste is the monster that crosses your path. You cannot have political reform, you cannot have economic reform rules you kill this monster." (किसी भी दिशा में मुड़े, जाति का राक्षस रास्ता रोके खड़ा मिलेगा। इस राक्षस को मारे बगैर न तो कोई राजनीतिक सुधार संभव है न आर्थिक)

जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज से बंधुत्व की भावना के साथ-साथ मानवीयता की भावना को भी नष्ट कर दिया। भारतीय समाज ऊंच-नीच जाति के आधार पर बंटा था, एक जाति में अनेक उपजातियां बन गई थी। अस्पृश्य जातियों का दर्जा समाज में सबसे निम्न था। उन्हें मानवीय गरिमा से वंचित तो कर दिया था, साथ ही शिक्षा, संपदा और समाज से बाहर फेंक दिया था। समाज की विडम्बना तो देखिए, एक व्यक्ति को छू लेने मात्र से दूसरा व्यक्ति अपवित्र बन जाता है। छुआछूत का भयंकर रूप हिन्दुस्तान के सिवाय दुनिया में कहीं नहीं मिलेगा। इसका कारण डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ब्राह्मण शास्त्रों तथा विवेचित जाति व्यवस्था को मानते थे। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर एक जगह कहते हैं- ''अछूतों की हालत उस समय बहुत चिंताजनक थी। अछूतों का सभ्य समाज के कला-जगत में प्रवेश प्राप्ति नहीं था और सांस्कृतिक जीवन में भी उनका प्रवेश निषिद्ध है। वे केवल झाड़ू-बुहारी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनका और कोई काम नहीं है। अस्पृश्यता आजीविका की कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करती। हिन्दुओं में से कोई भी अछूतों के प्रति रोटी कपड़ा और मकान के लिए

जिम्मेदार नहीं है। अछूतों का स्वास्थ्य किसी की चिन्ता का विषय नहीं है। निस्संदेह किसी अछूत की मृत्यु एक प्रकार का छुटकारा माना जाता है।'' हिन्दुओं में एक कहावत प्रचलित है, जिसका अर्थ है 'अछूत की मौत प्रदूषण से निजात''। अछूत परतंत्र सामाजिक व्यवस्था के किसी लाभ का दावा नहीं कर सकते थे तथा स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था की सभी हस्तियों का बोझ उठाने के लिए अभिशप्त थे। इसलिए डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर अस्पृश्यता के रोग को समाज से पूर्ण रूप से खत्म करना चाहते थे।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर अपने बचपन के दिनों से ही गुलामी की जिन्दगी जी रहे थे। उस समय सामाजिक स्थिति भी वैसे ही थी, अछूत हिन्दू होते हुए भी भी मंदिरों में नहीं जा सकते। सार्वजनिक कुंओं में पानी नहीं पी सकते थे। अछूतों के बच्चों को स्कूल के अन्दर न बैठकर पढ़ना पड़ता था स्वयं डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर इन परिस्थितियों से गुजर चुके थे। वे इस तरह की यानी गुलामों की ज़िन्दगी जीना नहीं चाहते थे। अमेरिका के संविधान के 14वें संशोधन ने नीग्रोज का आज़ादी दी तो डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर भी इस तरह अछूतों की आज़ादी चाहते थे। उनका कहना था कि अछूत सम्मान के साथ जाए। अछूतोद्धार के लिए सन् 1917 में उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' नाम पाक्षिक निकाला। इस पत्रिका के द्वारा वे अछूतों को जूठन लेने और मांगने से रोका। अमेरिका के कास्मोपोलिटन क्लब के अनुभवों से उन्हें इतना तो पता चला था कि वहां भारतीय छात्र बिना भेदभाव के सम्मान के साथ रहते थे। हिन्दुस्तान में भी ऐसा ही हो जहां सभी मिलकर रहे। अछूतों की एक सभा की अध्यक्षता करते डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने कहा था– ''मुसलमान तथा ईसाई तो सवर्ण हिन्दुओं के तालाब व कुंओं से पानी ले सकते हैं, परन्तु उन जैसे हिन्दू नहीं। अचरज की इन तालाबों पर अछूतों के जानवर पानी पी सकते हैं, परन्तु वे नहीं। इसलिए जरूरत है कि स्वयं अछूत आगे आए और ज्ञान प्राप्त कर सम्मान से जीने की शपथ लें।''

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने अछूतों को समझाया कि मानव-मानव समान है। मानव-मानव में भेदभाव करना अमानवीय और अनैतिक है। उन्होंने कठोर शब्दों में ऐसे धर्म और समाज की कड़ी आलोचना की जिसमें छुआछूत, असमानता, विषमता और शोषण चक्र विद्यमान है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर यूरोप और अमेरिका आदि देशों में पढ़ाई के सिलसिले में रह चुके थे तो उन्होंने देखा कि वहां न जाति का बन्धन है न ही छुआछूत और न ही जाति के आधार पर किसी की उपेक्षा या अपमान। तब उन्हें अहसास हुआ कि लोकतांत्रिक संरक्षण में सभी मानव समान है। आज़ादी से ज्यादा तो हमें सामाजिक और धार्मिक स्तर पर समानता का व्यवहार चाहिए। जब तक हिन्दू धर्म दलितों को सामाजिक और धार्मिक स्तर पर समानता का व्यवहार नहीं करता तो तब तक देश तरक्कीनहीं करेगा। उन्होंने देश की आज़ादी से ज्यादा दलितों की सामाजिक समानता का अधिकार को महत्व दिया। ''डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि मात्र देश को स्वतंत्र कराने से काम नहीं चलेगा अपितु वह एक श्रेष्ठ राष्ट्र भी बने, जिसमें उसके प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक समानता मिले। यदि ब्राह्मण जाति को ब्रिटेन शासन रास नहीं आता तो अछूत जातियों को ब्राह्मण शासन बर्दाश्त नहीं होगा। यदि स्वराज्य में अछूतों को मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया तो वह उनके लिए स्वतंत्रता नहीं अपितु घोरतम परतन्त्रता का प्रतीक होगा।''

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर समाज में व्याप्त छुआछूत को समाप्त करना चाहते थे। इस छुआछूत के कारण उन्होंने अपने जीवन में अनंक कल्पनातीत कष्ट सहे थे। दलित वर्ग को छुआछूत की नारकीय यातना से छुटकारा दिलाना चाहते थे। जब डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर बड़ौदा सरकार की सेवा के दौरान थे तो जो अनुभव हुए वह रोंगटे खड़ा करने वाले हैं। जब वे बड़ौदा पहुंचे तो उन्हें लेने स्टेशन कोई नहीं आया, न ही उन्हें किसी होटल में रहने के लिए जगह मिली। कोई भी मकान मालिक उन्हें दलित होने के कारण किरायेदार के रूप में रखने के लिए तैयार नहीं था। अंत में अम्बेडकर जी को अपनी जाति छुपाकर पारसी होटल में रहना पड़ा। जब पारसी होटल मालिक को हकीकत पता चली तो वह अम्बेडकर को मारने दौड़े। दफ्तर में भी आए दिन अपमानित होना पड़ता, चपरासी तक उनसे दुर्व्यवहार करते। फाइल हाथ में न देकर, दूर से मेज पर फेंक देते उन्हें पतित होने का डर था। पानी पीने के लिए भी वे तरसकर रह जाते। महाराज से शिकायत करने पर भी उनके साथ व्यवहार ऐसा ही बना रहा। अंत में जब यह अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ तो उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी और बम्बई आ गए। बम्बई में सिडनहम कॉलेज में राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्राध्यापक की नौकरी कर ली तथा यही से सामाजिक संघर्ष के लिए अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया।

बम्बई से डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने 'मूक नायक' मराठी साप्ताहिक पत्र निकाला ताकि वह अपनी आवाज़ उन लोगों तक पहुंचाये जो शोषितों की कराह कभी नहीं सुनते। इसी बीच महाड़ तालाब में पानी का आंदोलन, काला राम मंदिर प्रवेश आंदोलन, जनसभा में मनुस्मृति का दहन तथा महान वेतन आंदोलन जैसे क्रांतिकारी आंदोल कर वे दलित आंदोलन के महान नेता बन गए।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ''नारी जाति की उन्नति में विश्वास करते थे। समाज की उन्नति को नारी की उन्नति से तौलते थे। वे स्त्री व पुरुष दोनों को समान मानते थे और चाहते थे कि स्त्रियों को

हिन्दू समाज में समान अधिकार मिलें। उनका मत था कि भारतीय नारी को स्वच्छ रहना चाहिए, पढ़ना चाहिए, अपने बच्चों को शिक्षा देनी चाहिए। हीनता की भावना से ऊपर उठना चाहिए और शादी कम उम्र में नहीं करनी चाहिए।'' इन बातों से स्पष्ट होता है कि दलित उद्धार के साथ-साथ वे नारी उद्धार पर भी जोर देते थे। उनका कहना था नारी जाति को यथोचित सम्मान दिए बिना हिन्दू समाज का कल्याण असंभव है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर हिन्दू कोड बिल इसलिए लाना चाहते थे ताकि कानून द्वारा उनको शोषण मुक्त किया जा सके और उन्हें पर्याप्त अधिकार मिल सकें।

इसलिए पहली बार दलितों को लगा कि हमारे उद्धार के लिए अम्बेडकर आए हैं, और दलित उन्हें मसीहा से कम नहीं समझते थे और प्यार से उन्हें बाबा कहते। इस तरह डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने हिन्दू समाज के एक झुलसते व अवसन्न अंग को चेतना प्रदान की।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर कर्मनिष्ठ और सत्यवादी महापुरुष थे। उन्होंने सन् 1936 में स्वतंत्र लेबर पार्टी बनाकर दलित वर्ग शोषित वर्ग, उपेक्षित वर्ग, कृषक और मजदूरों के हित की बात उठाई और उन्होंने उन्हें न्याय दिलाने की कोशिश की। सन् 1942 में स्वतंत्र लेबर पार्टी भारतीय शेड्यूल्ड कास्ट फैडरेशन में बदल गई। आगे चलकर सन् 1952 में यह पार्टी भी भारतीय रिपब्लिकन पार्टी में बदली। उन्होंने एक पेशे में एक से अधिक यूनियन बना सकने, सवेतन अवसर, मजदूरों को एक होकर संघर्ष करने, देवदासी प्रथा का अंत करने, खेती एवोल्यूशन बिल, हिन्दू कोड बिल आदि की मांग की और तमाम शोषितों को एक हो जाने की आवाज दी।

12 नवम्बर 1920 को लन्दन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर ने दलित प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया और अपने ज्ञान भण्डार से सबका ध्यान अपनी ओर खींचा और कहा ''हिन्दुस्तान में केवल हिन्दू और मुसलमान ही नहीं रहते, बल्कि वहां पर एक ऐसा वर्ग भी रहता है, जो कहने को हिन्दू है, लेकिन न तो उसे हिन्दुओं के तरह मंदिरों में जाने का अधिकार है, न हिन्दू धर्म के शास्त्रों को पढ़ने का और न ही हिन्दू धर्म के किसी अनुष्ठान में भाग लेने का। यह अछूत वर्ग जो हिन्दुस्तान की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा है। वहां पर पशुओं से भी बदतर स्थिति में सम्पूर्ण मानवाधिकारों से वंचित होकर जीवन-यापन कर रहा है, अतः इस वर्ग को स्वतंत्र प्रतिनिधित्व दिया जाए। दुनिया के सामने पहली बार दलितों का सच सामने आया। जिसके फलस्वरूप 25 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेमेज मेक्डोनाल्ड ने कम्यूनल अवार्ड की घोषणा की तो महात्मा गांधी ने इसके विरोध यरवाड़ा जेल में आमरण अनशन शुरू कर दी। महात्मा गांधी के प्राण रक्षा के लिए बड़े-बड़े नेताओं ने अम्बेडकर पर दवाब डालना शुरू किया तो डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर को 24 सितंबर 1932 को पूना पैक्ट करना पड़ा। लेकिन दुनिया ने डॉ. अम्बेडकर की 'अछूत जागरण' और उनके नेतृत्व की आंच को महसूस कर लिया था। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने निम्नलिखित बातों से अपने अनुयायियों का ध्यान आकृष्ट किया था-

1) याद रखो, दुनिया में जबरदस्त संघर्ष के बाद ही श्रेष्ठ उपलब्धियां संभव हो सकी हैं।
2) दास को यह बोध करा दो कि वह दास है तो वह विद्रोह कर देगा।
3) छिने हुए अधिकार अत्याचारों से अनुनय-विनय से नहीं कड़े संघर्ष करने पर ही हासिल हो सकते हैं।
4) सावधान! अग्नि में इसलिए मत कूद पड़ो कि मैं कहता हूं। आप खूब सोचो, मनन करो और अपनी अंतरात्मा की आत्मा से संघर्ष की ज्वाला के राही बनो।
5) आज सबसे बड़ी जरूरत यह है कि व्यक्तियों में संयुक्त राष्ट्रीयता की भावना का उदय हो।
6) अपना सम्मान खोकर कोई जाति तरक्की नहीं कर सकते।
7) धर्म और दासता को कोई मेल नहीं है।
8) दलितों के लिए आरक्षण-सुविधा की व्यवस्था हो।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर हमेशा अपने अनुयायियों को आंख खोलकर और खुले दिमाग से सोचने के लिए कहते। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर आजीवन अछूतों को सामाजिक और धार्मिक प्रतिष्ठा दिलवाने के लिए कड़ा संघर्ष करते हरे। अंत में मैं डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के बारे में इतना ही कहूंगी कि हमें भी शिक्षा, संगठन और संघर्ष करते बाबासाहेब के रास्ते पर चलना होगा तभी आगे चलकर डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के सपनों के अनुरूप जातिविहीन भारत का निर्माण होगा। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर दलितों के सृष्टा और दृष्टा है। उनके क्रांतिकारी और समता के विचारों का प्रभाव आज युवा दलितों पर जरूर पड़ा हैं वे भी इस जाति द्वेष और तिरस्कार को जन्म देने वाली व्यवस्था का विरोध करते हैं और वे कहते हैं-

''मेरे रक्त में।
असंख्य सूर्यबिंब जन्म ले चुके।
कब तक सहेंगे घोर बंदिवास।
क्यों बने रहेंगे युद्धबंदी वह देखो
मेरी अस्मिता आकाश तक फैल गई।
मैं भी जिंदाबाद की घोषणा करूंगा।
क्योंकि मेरे रक्त में असंख्य सूर्य
जन्म ले चुके। जो इस शहर-शहर में
चिंगारी भर देंगे।'' ■

संदर्भ सूची

1. डॉ. अम्बेडकर एक चितन-मधु लिमये
2. डॉ. अम्बेडकर चिंतन और विचार-डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर
3. दलित विमर्श की भूमिका-कंवल भारती

(लेखिका विश्वविद्यालय कॉलेज मंगलूर में हिन्दी विभाग में एसोयिएट प्रोफेसर हैं)

अम्बेडकरी विचारधारा के विविध आयाम

■ नरेश कुमार साहू

दुनिया भर में अनेकों चिंतक हुए हैं, साथ ही उनके विचारधारा को मानने वाले भी हुए हैं, लेकिन इन चिंतको में चिंतनशीलता विकसित करने में इन महापुरुषों का महती भूमिका है। वैश्विक धरातल पर देखें तो गौतम बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, गुरुनानक, मुहम्मद पैगंबर, संत रैदास, संत कबीर, गुरुघासीदास, ज्योतिबा फूले, छत्रपति शाहू जी महाराज, पेरियार, ललई सिंह यादव, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, ग्राम्सी, कार्ल मार्क्स, एंगेल्स, लेलिन, डार्विन, सिगमन फ्राइड़, नेल्सन मंडेला जैसे महानतम विचारक हुए। इन विचारकों ने समाज की समस्याओं को वास्तविक रूप में समझते हुए, पुराने जर्जर पड़े ध्वस्त पाखंडता अंधविश्वास की दीवार को ध्वस्त कर बेहतर समाज निर्माण की बात कहते हुए नए वैज्ञानिक तर्कपूर्ण सिद्धांत पेश किए और भाईचारे का संदेश भी दिए, जिससे आज मानव समाज में चेतना आई और विकास के मार्ग पर चल पड़े हैं।

भारतीय परिपेक्ष्य में देखें तो स्वतंत्राता प्राप्ति के बाद वर्तमान दौर बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों को सत्कार करने वालों का है, इनमें ज्यादातर दलित, बहुजन व आदिवासी शामिल हैं। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की साहित्य रचना को समझने का या जानने का मतलब ही है, कि हमारे अतीत के साथ ही वर्तमान को समझना जानना व मानना है, जिसमें दलित बहुजन को आगामी सदियों के लिए कैसे कार्य प्रारूप तैयार करना शामिल है। इस तरह से बात करें अम्बेडकरवाद के सही मायने एक दृष्टिबोध या एक चश्मा लगाने से है जिसमें समाज की सभी समस्याएं, जिसमें वर्ण, जाति, लिंग,

आर्थिक, राजनैतिक, व धार्मिक सभी पहलुओं पर पैनी नजर रख पाते हैं। साथ ही बेहतर समाज के लिए एक नया माडल या डिजाइन तैयार करते हैं जिसे सामाजिक अभियंता कहते हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट के आने से या संचार क्रांति का आगाज होने से अम्बेडकरवादियों में जुड़ाव हुआ है और अम्बेडकरी नजरियों से समाज से वाकिफ हुए हैं और प्रबुद्ध भारत निर्माण में अपना हर तरह से योगदान दें रहें हैं। आज फेकबूक, ब्लॉग, ट्विटर लाखों लोग बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार लिखकर पोस्ट व साझा कर रहे है। जिसमें डॉ. अम्बेडकर के जीवन व उनके विचारों के साथ ही संविधान में समाज के बेहतर विकास हेतु की गई बातें शामिल हैं। अब बात करते हैं बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों को मानने का मतलब क्या है?

संत महापुरुषों की परंपरा को आगे बढ़ाना – जिनमें सर्वप्रथम नाम आता है तथागत गौतम बुद्ध- की जिसने पहली बार वर्ण जाति वयवस्था के खिलाफ क्रांति का बिगुल बजाया और ब्राह्मणवाद का विरोध किया। प्रज्ञा, शील, करुणा के साथ ही समता स्वतंत्रता व बंधुत्व का संदेश दिया। दुनिया के महान बुद्धजीवी में या कहे की सामाजिक चिंतक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के चलते आज पूरी दुनिया में इनके विचार सार्थक हैं। आज गौतम बुद्ध के मानने वाले लोग पूरी दुनिया में हुए हैं साथ ही लगातार इनके विचार का सत्कार किया जा रहा है। इनके मानने वाले आज पूरी दुनिया में कई क्षेत्रों में मिशाल कायम किए हैं, बहुत से बौद्ध राष्ट्र आज आज अमन व शांति के साथ विज्ञान और तकनीक पूरी

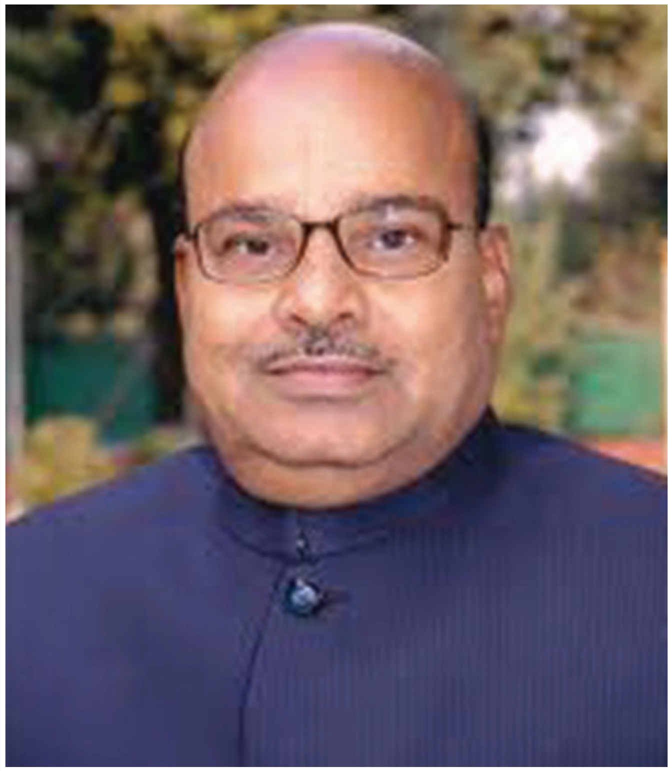

श्री थावरचंद गेहलोत
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री एवं अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
भारत सरकार

श्री कृष्ण पाल गुर्जर
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री
भारत सरकार

श्री विजय सांपला
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री
भारत सरकार

RNI No. DELHIN/2002/9036

प्रकाशक व मुद्रक डॉ. देवेन्द्र कुमार धोदावत, द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1,
मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110064 से मुद्रित तथा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : सुधीर हिलसायन